राज सन्यासी

'सुनो बेटा, तुम्हें एक दूसरी शिक्षा देता हूं। पाप और पुण्य कुछ भी नहीं हैं। इस संसार में कौन-किसका है, कौन पिता है, कौन भाई, कौन कहता है कि हत्या पाप है। हत्या तो रोजाना होती है न जाने कितनी चिटियां हमारे पांव तले आकर मसल जाती हैं हम लोग उनकी अपेक्षा कुछ श्रेष्ठ है। इसलिए इन क्षुद्र प्राणियों के जीवन के साथ खेला करते हैं।

इसी उपन्यास से

अनुवादक: चन्द्र माहन
अनिल पाकेट बुक्स ईश्वरपुरी मेरठ शहर

RAJ. SANAYASI
NOYEL

RAVINDRA NATH TEGORE

मूल्य दो रुपया

राजसन्यासी

प्रस्तुत अंक एक विचित्र और सनसनी पूर्ण कथानक है! इसका श्री गणेश बड़ा ही अनोखा है, नोवल पुरस्कार विजेता महर्षि रविन्द्र नाथ टैगोर की लेखनी इसमें लोहा मनवाने के लिये विवश कर देती है...व्यतीत होते हुए समय के साथ-२ नई-२ घटनाओं का सामने आना, कथानक की अनूठी और नई प्रणाली, हास्य परिहास से रंगीन वातावरण ऐसे दृश्य सामने लाते हैं कि पढ़ने वाला सब कुछ भूलकर केवल कहानी के तिलिस्म में खोया रहता है।

ठाकुर की लेखनी का चमत्कार यही है कि वह पढ़ने वालों के मस्तिष्क को अपनी अनोखी व दिलचस्प शैली में पूर्ण रूप से जकड़ लेते हैं! और अनुवादक ने इसे सजाने संवारने में अपनी योग्यता दिखा दी है। कथानक में चार चांद लगा दिये हैं। कथानक आपको बेहद पसंद आयेगा और आपका भरपूर मनोरंजन करेगा—ऐसा हमारा विश्वास है।

दो शब्द:—

...बेल पुरस्कार विजेता विश्वविख्यात उपन्यासकार श्री रविन्द्र नाथ टैगोर का यह प्रसिद्ध उपन्यास विश्व साहित्य की अनमोल ... है। प्रकाशक महोदय ने जब मुझे इसके, अनुवाद का भार ... तो मैं प्रसन्न हो उठा, वैसे तो मैंने अब तक कई भाषाओं ... उपन्यासों का अनुवाद करके पाठकों का मनोरंजन किया है ... इस बंगाली उपन्यास का अनुवाद करना मेरे लिए प्रथम प्रयास है। इसका ट्रांस्लेशन करते समय जिन बातों को मैंने महसूस किया वही लिख रहा हूँ ···

यह पढ़ने वालों के मन में लगातार तीव्र उत्सुकता बनाए रखने वाला अत्यन्त रोचक कथानक, जीवन में कभी भी भूले न जा सकने वाले करैक्टर्स मानव जीवन की गहरी करुणा और व्यंग का अनोखा चित्रण, लेखक के महान कथाशिल्प की समस्त विशेषताओं का आश्चर्य जनक प्रदर्शन—इस कलाकृति के ये गुण इसे असाधारणता प्रदान करते हैं एक महान साहित्यिक ऐतिहासिक कृति होते हुये भी यह रचना सामान्य पाठक की दृष्टि से अत्यन्त रोचक है और उसका भरपुर मनोरंजन करते हुए उस पर अपनी एक स्थायी छाप छोड़ जाती है।

अनुवादक को, अर्थात मुझ को मूल के प्रवाह को बनाए रखने में अपूर्व सफलता प्राप्त हुई है।

मुझे बराबर सहयोग मिलता रहा तो मैं आपकी इसी प्रकार सेवा करता रहूँगा···

उपन्यासकार
चन्द्रमोहन
बी. एस. सी.

२००, खैरनगर बाजार,
अहमद रोड,
मेरठ शहर

भुवनेश्वरी देवी के मन्दिर का घाट दूर तक गोमती नदी के जल में चला गया था। उस दिन......

ग्रीष्म की सुहावनी सुबह होते ही त्रिपुरा के महाराज गोविन्द माणिक्य नहानें के लिए आये। उनके साथ उनका भाई नक्षत्र राय भी था।

ठीक इसी समय एक छोटी सी बालिका अपने भाई के साथ घाट पर आई। बालिका ने आते ही राजा का कपड़ा पकड़ कर खींचकर पूछा—

'कौन हो तुम ?'

'मां !' राजा ने मुस्कराकर उत्तर दिया—'मैं तुम्हारी ही संतान हूँ।'

बालिका बोली—

'तुम मुझे पूजा के लिए फूल तोड़ कर दो ना !'

राजा ने कहा—

'चलो !'

राजा के नौकर-चाकर यह देखकर आश्चर्य में पड़ गये, राजा से उन्होंने कहा—

'महाराज आप क्यों जाते हैं, फूल हम तोड़ देते हैं।'

'नहीं इसने मुझसे कहा है अतः में ही तोड़ूंगा ?'

राजा के नेत्र बालिका के चेहरे पर जम गये। उस दिन की सुन्दर ऊषा से उसका मुख-मंडल होड़ कर रहा था। राजा का हाथ थामकर वह मन्दिर से लगी हुई फुलवाड़ी में घूमने

लगी। छोटा भाई भी अपनी वहन की साड़ी पकड़े इधर-उधर घूम रहा था।

राजा ने लड़की से पूछा—

'तुम्हारा नाम क्या है ?'

'हासि' लड़की ने कहा।

फिर उन्होंने लड़के से पूछा—

'और तुम्हारा नाम !'

लड़का अपनी वड़ी-वड़ी आँखों को और भी विस्फारित करके वहन की ओर देखता रहा, उसने उत्तर नहीं दिया। हासि ने उसके कन्धे पर हाथ धरा और कहा—'कहो न, मेरा नाम 'ताता' है !'

लड़के ने अपने नन्हें-नन्हें होंठों को थोड़ा सा खोलकर वड़ी गम्भीरता से अपनी वहन के कथन को प्रतिध्वनि की तरह दुहरा दिया और फिर कसकर अपनी वहन का आँचल थाम लिया।

हासि ने राजा को समझाते हुए कहा।

'यह छोटा वच्चा है न, इसलिए लोग इसे 'ताता' कहते हैं।' फिर वह भाई की तरफ मुंह घुमाकर वोली—

'अच्छा मन्दिर कहो।'

भाई ने वहन की ओर देखकर कहा—

'लदन्द'

हासि हस पड़ी।

'ताता मन्दिर तो कह पाता नहीं' लदन्द कहता है, अच्छा तुम कढ़ाई, वोलो।'

वह गम्भीर होकर वोला—

'वलाई'

हासि फिर हंस पड़ी।

'ताता हम लोगों की तरह 'कढ़ाई' तो कह नहीं पाता, 'वलाई' कहता है।' इतना कहकर उसने ताता को पास खींच लिया और उसकी पेशानी का चुम्बन ले लिया।

ताता अपनी वहन की इस आकस्मिक हंसी और अपने प्रति इतने प्यार का कोई कारण न ढूंढ पाया। वह केवल अपनी बड़ी-२ आंखों को खोले देखता रहा।

'मन्दिर' तथा 'कडाही, कढ़ाई' शब्दों के उच्चारण करने में ताता ही गलती करता था, यह वात स्वीकार नहीं की जा सकती थी।

ताता की अवस्था में हासि कदाचित् 'मन्दिर' को 'लदन्द' न कहती रही हो पर 'पालू' तो कहती ही थी। वह 'कढ़ाई' को 'बलाई' कहती थी या नहीं, यह कहना मुश्किल था। किन्तु 'कौड़ी' को 'घई' तो कहती ही थी।

खैर, ताता के इस प्रकार के विचित्र उच्चारण को सुनकर जो अट्टाहास हुआ उससे अधिक आश्चर्य क्या हो सकता था।

बालिका ने राजा को ताता के वारे में अनेकाएक बातें वतायी। उसने वताया—

'एक बार एक बूढ़ा आदमी कम्बल ओढ़कर आया। ताता उसे चालू कहने लगा। इसकी खोपड़ी में वुद्धि नाम मात्र को है वस ! ऐसे ही एक वार यह पेड़ पर शरीफा के फलों को पक्षी समझकर अपने नन्हें-नन्हें हाथों से ताली वजाकर उनको उड़ाने की कोशिश करने लगा था।' इस प्रकार ताता की वहन ने यह साबित कर दिया कि ताता अभी छोटा बालक है।

ताता ने अपनी वुद्धि की बात खामोशी से सुनी थी। जो कुछ वह समझ पाया उससे यही लगता था कि उसके क्षोभ का कोई कारण नहीं।

राजा ने उसे वहुत सारे फूल तोड़ कर दिये और उन्हें

महसूस हुआ जैसे उनकी पूजा खतम हो गई। इन दो सरल—हृदय प्राणियों को देखकर, उनका स्नेह-पूर्ण सीन देखकर, एवं इस पवित्र-हृदय की आशा को फूल तोड़कर पूरा करके उनका देव पूजन खतम हो गया।

उस दिन के बाद से नींद टूटने और सूर्य के निकल आने पर भी राजा का प्रातः काल नहीं होता, बस उन दोनों छोटे भाई बहनों का चेहरे देखने पर ही उनकी सुबह होती थी।

रोजाना वह उन्हें फल तोड़ कर देते तभी नहाते थे।

ये भाई-बहन घाट पर बैठ कर उनके नहाने को देखते रहते थे। जिस दिन प्रातः काल वे दोनों नहीं आते उस दिन मानों उनका सन्धया-हवन पूरा नहीं होता।

हासि और ताता के माँ-बाप न थे। केवल एक चाचा था, उसका नाम 'केदारेश्वर' था। ये दोनों बच्चे उसके जीवन के ।त्र सुख और सम्वल थे।

एक वर्ष बीत गया।

ताता 'मन्दिर' शब्द भी सही कहने लगा था। किन्तु 'कढ़ाई' को वह अब भी 'बलाई' ही कहता था—ज्यादा बातचीत भी अभी कर नहीं पाता था।

गोमती नदी के किनारे नागकेशर पेड के नीचे पांव फैला-कर उसकी बहन जो कहानी कहती, ताता उसे बड़े ध्यान से सुनता था।

उन बातों का कोई मतलब नहीं होता था किन्तु वह जो समझता—वही जानता था। उन बातों को सुनकर, उस पेड

के नीचे सूर्य के प्रकाश में, ठन्डी और ताजी हवा में उस छोटे बच्चे के दिल में कितनी बातें उठती, ख्यालों में कितने ही विचार बनते—बिगड़ते थे।

ताता कभी किसी दूसरे बच्चों के साथ नहीं खेलता था। वह एक छाया की भांति अपनी वहिन के साथ घुमता था।

महीना आषाढ़ का था।

प्रातः काल काले बादलों से भरा हुआ था।

किसी दूसरे प्रदेश से बारिस की बूंदों में भीगी शीतल हवा चल रही थी।

गोमती नदी के जल व दोनों पार के जंगलों के ऊपर अन्धकार युक्त आकाश की छाया पड़ रही थी। कल रात अमावस्या थी। भुवनेश्वरी देवी की पूजा कल हो चुकी है।

ठीक वक्त पर हासि ताता का हाथ पकड़े नहाने के लिए आयी। खून की एक धार श्वेत पत्थर की सीढ़ी से बहकर जल में मिल गई थी। कल रात जो एक सौ एक भैंसों की वलि चढ़ाई गई थी उनही का यह खून था।

हासि ने उस खून की धार को देखकर सहसा राजा के कान के पास जाकर पूछा—

'यह किस चीज का निशान है।'

राजा ने उत्तर दिया—

'देवी, खून का दाग है यह।'

'इतना खून क्यों?' उस बालिका ने इतने कातर स्वर में पूछा कि राजा के हृदय में भी यह प्रश्न उठने लगा—

'इतना खून क्यों?' राजा सिहर उठे।

राजा बहुत दिनों से प्रतिवर्ष खून की धार देखते आ रहे थे, किन्तु एक छोटी-सी बालिका का सवाल सुनकर उनके मन में विचार आया—

'आखिर, इतना खून क्यों ?' वह उत्तर देना भूल गये। नहाते समय वह यही सब सोचते रहे।

हासि पानी में अपना आंचल भिगोकर, सीढ़ी पर बैठे-२ खून की धार को मिटाने लगी। उसकी देखा-देख ताता भी अपने हाथ से वह साफ़ करने लगा।

हासि का सारा आँचल खून से लाल हो गया।

राजा नहा चुके, तब तक वे दोनों खून की धार को साफ कर चुके थे।

हासि को घर पहुंचते ही बुखार चढ़ आया।

ताता पास में बैठकर छोटी उंगलियों से बहन की बन्द आंखों को खोलने लगा।

'दीदी।' वह पुकार उठता था।

हासि क्षण भर के लिए जाग पड़ती।

'क्या बात है ताता। वह उसे अपने समीप खींच लेती।

'दीदी, तू उठेगी नहीं।' वह बोला।

'हासि एकाएक जागकर और ताता को छाती से सटाकर बोली—

'क्यों न उठूंगी, मुन्ना।' किन्तु उसमें उठने की शक्ति न रह गई थी।

ताता के छोटे से हृदय में मानों अंधकार छा गया था। दिन भर के खेल-कूद की आशा एकाएक मलिन हो गई। आकाश इस दिन अंधकारमय था। घर की खपरैल पर क्रमशः बारिस का शब्द सुनाई पड़ रहा था।

केदारेश्वर अपने साथ एक वैद्य लेकर आए। वैद्य ने नाड़ी पकड़कर और दशा देखकर हालत अच्छी नहीं समझी।

दूसरे दिन राजा नहाने आये तो उन्हें वे दोनों बहन-भाई

दिखाइ न पड़े। उन्होंने सोचा शायद वर्षा के कारण वे आ ना सके हों।

नहा कर वह पालकी में बैठे और अपने वाहको को आदेश दिया।

'केदारेश्वर के मकान की ओर चलो।'

सेवक-गण अचम्भे में पड़ गये; पर राजा की आज्ञा वह टाल भी न सकते थे।

राजा की पालकी जब आंगन में पहुंची तो घर में बड़ी खलबली मच गई। उस हल्ले में सब लोग रोगी की बिमारी की बात भूल से गये। ताता अपनी जगह से न हिला।

राजा को घर में आता हुआ देखकर ताता ने पूछा—

'क्या हुआ महा'

राजा ने कोई उत्तर नहीं दिया। ताता ने गर्दन हिला कर पूछा—

'दीदी को चोट लगी है।'

उसके चाचा केदारेश्वर ने झल्लाकर कर कहा—'हां, चोट लगी है।'

ताता हासि के पास पहुंचा।

उसके सर को उठाकर, गले से लगाते हुए पूछा—

'दीदी, तुम्हें कहां चोट लगी है।'

दीदी ने कोई उत्तर नहीं दिया।

वह अब अधिक सहन न कर सका।

उसके छोटे होंठ प्रश्न का कोई उत्तर न पाकर फूलने लगे और फिर वह जोरों से रो पड़ा। वह सोचने लगा, दीदी मुझसे बोलती क्यों नहीं। मैंने क्या गलती की है।

राजा के सामने ताता का यह व्यवहार देखकर केदारेश्व

घवड़ा गये । वह ताता का हाथ पकड़ कर, उसे खींचता हुआ दूसरे कमरे में ले गया ।—हासि फिर भी कुछ न वोली ।

राज-वैद्य आकर सन्देह-पूर्ण वात कह गया ।

राजा सन्धया समय फिर हासि को देखने आयें । उस वक्त वालिका प्रलाप कर रही थी ।

'ओ मां, इतना खून क्यों ?'

राजा वोले ।

'मैं यह खून की धार मिटा दूंगा ।'

'भाई ताता आओ... हम मिलकर इस खून की धार को मिटाये ।' हासि वड़वड़ा रही थी ।

राजा ने कहा ।

'आओ मैं मिटाउंगा ।

सन्धया के वाद ही हासि ने एक वार आंख खोली । चारों ओर देखकर मानों किसी को खोजा । उस वक्त ताता दूसरे कमरे में सोते-२ सो गया था ।

हासि ने फिर आंखें बन्द कर ली । और फिर दोवारा उसने आंखें न खोली । रात्रि के दूसरे पहर में राजा की गोद में हासि की मृत्यु हो गई ।

जब लोग सदा के लिए हासि को उस घर से वाहर ले गये, उस समय ताता ज्ञानशून्य हो पड़ा सो रहा था । यदि वह जान पाता तो वह भी दीदी के साथ-२ परछाई की भाँति चला गया होता ।

राजा का दरबार लगा हुआ था ।

भुवनेश्वरी मन्दिर के पुरोहित कार्य-वश राजा के दर्शन करने आये थे ।

रघुपति नाम था पुरोहित का ।

इस नगर में पुरोहित को 'चोन्ताई' कहते हैं ।

भुवनेश्वरी देवी की पूजा चौदह दिन के बाद आधी रात में 'चौदह देवताओ' की पूजा के रुप में होती है । इस पूजा के समय एक दिन और दो रात को काई भी घर से बाहर नहीं आ सकता ।

राजा भी नहीं । राजा यदि बाहर आये तो उसे 'चोन्ताई' के समक्ष अर्थ, दंड चुकाना पड़ता है । किवदन्ती है कि इस पूजा की रात्री में मन्दिर में नर बलि होती है ।

इस पूजा उपलक्ष में सबसे पहले जो बलि चढ़ाई जाती है है वह राजभवन के दान-स्वरुप प्राप्त की जाती है । इसी बलि के लिए पशु प्राप्त करने के लिए पुरोहित राजा के पास आया था । पूजा के लिए केवल चौदह रोज और शेष रह गये थे ।

राजा ने खामोशी से कहा – 'इस साल मन्दिर में पशु बलि नहीं होगी ।'

समस्त सभासद अवाक् रह गये ।

राजा के भाई नक्षत्रराय के तो सिर के बाल खड़े हो गये ।

'मैं यह स्वप्न देख रहा हूँ क्या ?' पुरोहित ने कहा ।

घवड़ा गये । वह ताता का हाथ पकड़ कर, उसे खींचता हुआ दूसरे कमरे में ले गया ।—हासि फिर भी कुछ न वोली ।

राज-वैद्य आकर सन्देह-पूर्ण बात कह गया ।

राजा सन्धया समय फिर हासि को देखने आये । उस वक्त वालिका प्रलाप कर रही थी ।

'ओ मां, इतना खून क्यों ?'

राजा वोले ।

'मैं यह खून की धार मिटा दूंगा ।'

'भाई ताता आओ... हम मिलकर इस खून की धार को मिटाये ।' हासि बड़बड़ा रही थी ।

राजा ने कहा ।

'आओ मैं मिटाउंगा ।

सन्धया के बाद ही हासि ने एक बार आंख खोली । चारों ओर देखकर मानों किसी को खोजा । उस वक्त ताता दूसरे कमरे में रोते-२ सो गया था ।

हासि ने फिर आंखें बन्द कर ली । और फिर दोवारा उसने आंखें न खोली । रात्रि के दूसरे पहर में राजा की गोद में हासि की मृत्यु हो गई ।

जव लोग सदा के लिए हासि को उस घर से वाहर ले गये, उस समय ताता ज्ञानशून्य हो पड़ा सो रहा था । यदि वह जान पाता तो वह भी दीदी के साथ-२ परछाई की भांति चला गया होता ।

राजा का दरबार लगा हुआ था ।

भुवनेश्वरी मन्दिर के पुरोहित कार्य-वश राजा के दर्शन करने आये थे ।

रघुपति नाम था पुरोहित का ।

इस नगर में पुरोहित को 'चोन्ताई' कहते हैं ।

भुवनेश्वरी देवी की पूजा चौदह दिन के बाद आधी रात में 'चौदह देवताओ' की पूजा के रुप में होती है । इस पूजा के समय एक दिन और दो रात को कोई भी घर से बाहर नहीं आ सकता ।

राजा भी नहीं । राजा यदि बाहर आये तो उसे 'चोन्ताई' के समक्ष अर्थ, दंड चुकाना पड़ता है । किवदन्ती है कि इस पूजा की रात्री में मन्दिर में नर बलि होती है ।

इस पूजा उपलक्ष में सबसे पहले जो बलि चढ़ाई जाती है है वह राजभवन के दान-स्वरुप प्राप्त की जाती है । इसी बलि के लिए पशु प्राप्त करने के लिए पुरोहित राजा के पास आया था । पूजा के लिए केवल चौदह रोज और शेष रह गये थे ।

राजा ने खामोशी से कहा – 'इस साल मन्दिर में पशु बलि नहीं होगी ।'

समस्त सभासद अवाक् रह गये ।

राजा के भाई नक्षत्रराय के तो सिर के बाल खड़े हो गये ।

'मैं यह स्वप्न देख रहा हूँ क्या ?' पुरोहित ने कहा ।

राजा ने तत्काल उत्तर दिया।

'नहीं पुजारी जी, इतने दिनों तक हम लोगों ने ही स्वप्न देखा था। हमें ग्राज ग्रकल ग्राई है। एक बालिका का स्वरूप धारण कर मां दुर्गा ने मुझे दर्शन दिया। वह कह गई हैं, करुणा-मय भी जननी होकर मां ग्रपने ही जीवो के खून को ग्रब नहीं देख सकती

'मां इतने दिनों से फिर रक्त-पान क्यों करती चली ग्रा रही थी।'

'नहीं मां रक्त-पान नही करती थी। जब तुम रक्त-पात करते थे तो वे मुंह फेर लतीं।'

'महाराजा' रघुपति ने कहा—ग्राप राज्य सम्बन्धी कार्य भली भांति जानते हैं, इसमें सन्देह नहीं. किन्तु पूजा के बारे में ग्राप कुछ भी नहीं जानते। देवी को पीछे कुछ ग्रसन्तोष होता तो मैं पहले ही जान जाता।

ग्रधिक बुद्धिमान व्यक्ति की भांति नक्षत्रराय ने गर्दन ग्रकड़ा कर कहा—

'हां, यह बात ठीक है। देवी को यदि कुछ ग्रसंतोष होता पुजारी जी पहले ही जान जाते।

राजा ने कहा—'जिसका हृदय कठोर हो गया हो, वह देवी की बात को नहीं सुन सकता।'

रघुपति ग्राग बबूला हो उठा।

'ग्राप तो नास्तिक की तरह बात कर रहे है।'

'पुजारी जी ग्राप राज-सभा में बैठकर समय व्यर्थ नष्ट कर रहें हैं। मन्दिर के कार्य का समय बीतता जा रहा है, ग्राप मन्दिर में जाइये। जाते समय मार्ग में प्रचार कर दीजिएगा कि मेरे राज्य में जो व्यक्ति देवता के समीप जीव की बलि चढ़ायेगा उसे देश से बाहर निकाले की सजा दी जायेगी।'

रघुपति ने कांपते हुए खड़े होकर और जनेउ छूकर कहा-
तुम्हा नाश हो जाये ।'

यह सुनकर चारों ओर से लोग पुरोहित पर टूट पड़े । किन्तु
राजा ने इशारे से सबको रोक दिया ।

सब हट कर खड़े हो गये ।

रघुपति कहने लगा—

'तुम राजा हो—तुम चाहो तो प्रजा का सर्वस्व हरण कर
सकते हो लेकिन क्या इसका मतलब यह भी हैं की तुम माता
की बलि भी बन्द कर सकते हो ? मैं माता की सेवा करता हूँ,
तुम पूजा में बाधा नही डाल सकते ।'

मंत्री जी राजा के स्वभाव से परिचित थे ।

वे जानते थे कि एक ,बार कोई निश्चय कर लेने के बाद
राजा आसानी से बदलने के लिये पैयार नहीं होते थे ।

कुछ हिचकते हुए वह बोले—

'महाराज' आपके पूर्वज हमेशा से देवी के आगे बलि चढ़ाते
आये हैं । कभी भी इसमें कोई व्याघात तहीं हुआं ।' इतना कह
कर वह चुप हो गये ।

महाराज सोच मे पड़ गये ।

नक्षत्र राय ने अपना ज्ञान प्रदर्शित करते हुये कहा—

'जी हाँ, वह स्वर्ग में असन्तुष्ट होंगे ।'

मन्त्री फिर बोला ।

'महाराज । एक व्यस्था हो सकती है, जहाँ हजार बलिदान
हुआ करने थे वहां सौ की ही आज्ञा दे दीजिए ।'

यह सुन कर सभासद अवाक् रह गये ।

जैसे उनपर बजपात हो गया हो ।

राजा विचार मग्न बैठे थे ।

... राज-सभा से ज ... उठ

हुआ ।

इसी क्षण द्वारपाल की नजर बचाकर एक बालक राज-सभा में घुस आया ।

उसने अपनी बड़ी-२ आंखों से राजा की ओर देखते हुए पूछा—

'दीदी कहां है ।'

सब लोग उसकी ओर देखने लगे ।

'दीदी कहां है ।' वह दोबारा बोला ।

महाराज ने सिंहासन से नीचे उतर कर बालक को गोद में उठा लिया ।

और मन्त्री से बोले—

'आज से हमारे राज में बलिदान नहीं हो सकता ! और आप अब आगे इस बारे में कोई बात न करें ।'

'जो, हुक्म ?'

बालक ने अपना प्रश्न फिर से दोहराया ।

'दीदी कहां है ?'

माता के पास, महाराज ने कहा ।

बालक चुप हो गया ।

मानों उसे कोई आश्रय मिल गया हो ।

महाराज ने फिर उसे अपने पास ही रख लिया । केदारेश्वर को भी राज-प्रासाद में जगह मिल गयी ।

सभा-सद में काना फूसी होने लगी ।

यह भी क्या अन्धेरा है । कोई सुनने वाला नहीं । हम तो सिर्फ यही जानते थे कि बौद्ध लोग ही रक्तपात नहीं करते, लेकिन अब हम हिन्दुओं में भी कहीं यह प्रथा शुरू होने वाली तो नहीं है ।

नक्षत्र राय ने उनकी हां में हां मिलाई ।

हां कहीं हम हिन्दुओं के बीच भी यह प्रथा तो शुरू होने वाली तो नहीं है।

सब की राय एक समान थी।

●●●

भुवनेश्वरी के मन्दिर का सेवक जयसिंह जाति का क्षत्रिय था। उसके पिता सुचेतसिंह त्रिपुरा के राजमहल में एक पुराने नौकर थे।

सुचेत सिंह की मृत्यु के समय जयसिंह एक बालक ही था। इस अनाथ बालक को राजा ने मन्दिर में काम करने के लिए नियुक्त कर दिया था।

जयसिंह को मन्दिर के पुजारी रघुपति ने ही पाला-पोसा था। बचपन से ही मन्दिर में रहने के कारण वह मन्दिर को घर की तरह चाहता था।

उसकी मां भी नहीं थी।

इसलिये भुवनेश्वरी देवी को ही अपनी माता के समान मानता था।

इस समय मन्दिर का कार्य खत्म करके वह अपनी कुटी के दरवाजे पर बैठा हुआ था।

सामने मन्दिर का बगीचा था।

शाम हो रही थी।

घने बादल घिरे हुए थे, हल्की बूंदा—बांदी भी हो रही थी।

बारिस के पानी से सैकड़ों झरने से वह निकले थे और कल-कल करते, गोमती की तरफ भागे जा रहे थे।

जयसिंह के आनन्द की सीमा ही न थी।

अपनी जगह वह चुपचाप बैठा था।

चारों तरफ बादलों के अन्धकार में बन की छाया और घने पल्लवों सी श्यामल आभा के अलावा कुछ नहीं था। मैंढ़कों की टर्र–२ और बारिस की रिमझिम के मधुर स्वर में अपनी बाटिका को नहाते हुए देखकर जयसिंह के प्राण शीतल हो रहे थे।

अचानक सामने से पानी में भीगता हुआ रघुपति आ गया।

जयसिंह ने फौरन उठकर पैर धोने के लिये पानी और सूखे कपड़े ला दिये।

रघुपति झल्ला गया।

'तुमसे कपड़े लाने को किसने कहा था, कपड़े उठाकर अन्दर फैंक दिये।

पानी के लौटे को ठोकर मार कर दूर उछाल दिया।

जयसिंह कुछ समझ न पा रहा था।

'महाराज, मेरे से कोई गलती हो गई क्या।'

'यह तुमसे किसने कहा।' वह गुर्राया, फिर गुस्सा शांत होने पर जयसिंह से बोला।

'तुम जाकर आराम करो ?'

'महाराज, आप आराम न करेंगे क्या ?'

'मैं अभी कुछ देर बाद, देखो बेटा, मेरे गुस्से का तुम बुरा मत मानना। आज मेरा मन ठीक नहीं है। कल सारी बात मैं तुम्हें बताऊंगा ?'

जयसिंह उठ खड़ा हुआ।

रघुपति सारी रात जागता रहा। टहलता रहा।

प्रातः जयसिंह गुरु को प्रणाम करके खड़ा हो गया।

रघुपति ने कहा—

जयसिंह माता की बलि बन्द हो गई है।'
यह क्या कह रहें हैं महाराज, जयसिंह ने आश्चर्य से
।
'राजा कीं यही आज्ञा है।'
किस राजा भी।
हमारे यहां सब कितने राजा है, महाराज गोविन्द माणिक्य
आज्ञा दी है कि मन्दिर में जीव बलि नहीं हो सकती।
'और नर बलि।'
'ओह, क्या मुसिबत है! मैं कहता हूँ जीव-बलि और तुम्हें
र बलि सुनाई देता है।'
कोई भी जीव बलि नहीं हो सकता।
'नहीं!'
'महाराज गोविन्द माणिक्य ने यह आंदेश दिया है।'
'अब कितनी बार बताना पड़ेगा।'
जयसिंह चुप हो गया।
वह कुछ सोचने लगा था।
रघुपति ने उसे घूर कर कहा—
इसका प्रतिकार तो करना ही पड़ेगा।
'जी हां, मैं महाराज के पास जाकर उनसे निवेदन करूं
कि...।'
सब बकवास है।
'फिर क्या करना चाहिये।'
रघुपति कुछ देर तक सोचता रहा।
'क्या करना होगा—यह मैं कल बताऊंगा? कल तुम नक्षत्र-
राय से जाकर कहना कि मैं गुप्त रूप से उससे मिलना चाहता
हूँ।'

दूसरे दिन,

सुबह नक्षत्रराय ने आकर रघुपति को प्रणाम किया और पूछा—

'क्या बात है ?'

रघुपति बोला—

'तुम्हारे लिये माता का हुक्म है कि तुम माँ को प्रणाम करने चलो।'

दोनों मन्दिर में गये।

जयसिंह उनके पीछे था।

नक्षत्र राय ने भुवनेश्वरी देवी के आगे घुटने टेक दिए।

रघुपति ने पूछा—

कुमार राय क्या तुम राजा बनना चाहोगे।

'मैं, और राजा बनूं, आप कहीं मजाक तो नहीं कर रहे, यह सच नहीं हो सकता।' यह कहकर वह जोरों से हंसने लगा।

'मैं कह रहा हूं, तुम राजा हो सकते हो।'

आज आप क्या कह रहे हैं।

क्या मैं तुम से झूंठ बोल रहा हूं ?

भला आप क्यों झूंठ बोलने लगे। कल रात सुपने में मैंने मेढ़क देखा था। अच्छा महाराज मेढ़क देखने का क्या नतीजा निकलता है।

रघुपनि मुशिकल से अपनी हंसी रोक पाया।

मेढ़क कैसा था···उसके सिर पर दाग तो नहीं था।

वह बोला—

बिल्कुल था महाराज ! उसके माथे पर दाग तो था ही। दाग न होता तो काम कैसे चलता।

तभी तो तुम से कह रहा हूँ कि तुम्हें राजगद्दी मिलेगी।

मुझे राजगद्दी मिलेगी ! आपका मतलब है कि मुझे राज मिलेगा। अगर ऐसा न हुआ तो।

'मेरी बात झूंठ निकल सकती है क्या।'

'नहीं नहीं, ऐसी बात कदापि नहीं है। आप कह रहे हैं मुझे राजतिलक होगा। मान लीजिए अगर ऐसा न हुआ तो।'

जो मैं कह रहा हूं, वही होगा।

सच कहता हूँ महाराज अगर मैं राजा हो गया तो आपको मन्त्री बनाऊंगा।

यह बाद की बात हे। राजा बनने से पहले तुम्हें क्या करना होगा पहले यह सुनो। देवी मां राज रक्त देखना चाहती है। सुपने में मुझे यही आदेश मिला है।

'मां, राज-रक्त देखना चाहती है और सुपने में आपको आदेश मिला है, तब तो ठीक है।'

'तुम्हें गोविन्द माणिक्य का रक्त लाना होगा।'

नक्षत्र राय दंग रह गया।

मुंह खुला का खुला रह गया उसका।

'क्यों, क्या हुआ रघुपति व्यंग से गुर्राया।'

'कुछ नहीं।'

तब फिर क्या करोगे।

क्या करूं आप बताईये।

तुम्हें गोविन्द माणिक्य का खून लाना होगा।

उसके मुख से आवाज तक न निकल रही थी।

'तुम्हारे लिये कुछ नहीं हो सकता।' रघुपति ने घृणा से कहा।

'क्यों नहीं होगा । जो कहेंगे वही होगा । आप हुक्म तो कीजिए ।'

'मैं आदेश देता हूं?'

'क्या आदेश देते हैं ।'

रघुपति ने कहा ।

मां की इच्छा राज-रक्त देखने की है । तुम गोविन्द माणिक्य का रक्त दिखाकर उनकी इच्छा पूरी करो । यही मेरा हुक्म है ।

'मैं आज ही जाकर फतह खां को इस काम के लिये नियुक्त कर दूंगा ।'

'नहीं नहीं, किसी दूसरे आदमी को इसके बारे में जरा भी पता नहीं चलना चाहिये । मैं केवल जयसिंह को तुम्हारी सहायता के लिये नियुक्त कर दूंगा । कल सवेरे यह काम किस तरह पूरा होगा, यह मैं तुम्हें बता दूंगा ।'

नक्षत्र राय ने अपने कन्धे पर से रघुपति का हाथ उठाया। और फिर वहां से बाहर निकल आया ।

●●●

नक्षत्र राय के चले जाने पर जयसिंह ने कहा—

'गुरु देव इतनी भयानक बात तो मैंने कभी सुनी नहीं । आप मां के सामने और मां के ही नाम पर भाई से भाई की हत्या का प्रस्ताव रखा । और मुझे वहीं खड़े-२ सुनना पड़ा ।

दूसरा उपाय क्या है, फिर तुम ही बताओ ।

उपाय कैसा उपाय !

तुम भी नक्षत्र राय की तरह होते जा रहो है । इतनी देर

तक तुमने क्या सुना।

जो मैंने सुना वह सुनने योग्य नहीं है। उसको सुनने से पाप लगता है।

'पाप, पुण्य को तुम क्या समझते हो।'

इतने समय आपके पास रहकर यही सब कुछ तो सीखा है। फिर क्या पाप – पुण्य के बारे में भी नहीं समझूंगा।

'सुनो बेटा, तुम्हें एक दूसरी शिक्षा देता हुं। पाप और पुण्य कुछ भी नहीं है। इस संसार में कौन—किसका है। कौन पिता है। कौन भाई। कौन कहता है कि हत्या पाप है। हत्या तो रोजाना होती है। कोई सिर पर पत्थर लग जाने से मर जाता है। तो कोई बाढ़ में डूबकर। न जाने कितनी चीटियां हमारे पांव तले मसल जाती हैं। हम लोग उनकी अपेक्षा कुछ श्रेष्ट हैं, इसलिये इन छुद्र प्राणियों के जीवन के साथ खेला करते हैं। क्या इसमें यहां शक्ति का इशारा नहीं है। काल रूपणी महामाया के आगे प्रतिदिन न मालूम कितने प्राणियों का बलि–दान होता रहता है। चारों ओर प्राणियों का रक्त-स्रोत, उसके महा--खप्पर में आकर गिरता है। मैं भी इस खप्पर में एक बूंद रक्त और शामिल कर रहा हूं। राजा की बलि को एक दिन वह ग्रहण करती ही। मैं तो सिर्फ बीच में उपस्थित होकर उसका ऊपलक्षय मात्रबन रहा हूं।

जयसिंह देवी की तरफ मुंह करके बोला।

मां क्या इसलिये संसार तुमको मां कहता है। बोलो देवी! औ पावन हृदया, क्या सारे संसार का खून पीने के लिये तुमने यह लाल जुबान बाहर निकाल रखी है। स्नेह प्रेम ममता सौंदर्य धर्म सभी मिथ्या है। अगर कुछ सत्य है तो केवल तुम्हारी चीर रक्त पिपासा? तुम्हारी उदर पूर्ति के लिये इसांन–२ के गले छुरी फेरेगा, भाई भाई का खून करेगा। नहीं, नहीं, मां, तुम

प्रत्यक्ष कहो, यह शिक्षा असत्य है। यह शास्त्र झूठा है। तुम्हें मां न कहकर अपनी सन्तान का खून पीने वाली राक्षस कहां जायेगा—यह मैं सहन नहीं कर सकता।

जयसिंह रोने लगा।

रघुपति ने कहा।

'तभी तो वलि की प्रथा एक वारगी उठा दी गई।

रघुपति की बात का उत्तर देते हुए वह बोला—

'महाराज वह तो एक स्वतन्त्र विषय है। उसका कोई उद्देश्य है। उसमें कोई पाप भी नहीं, किंतु क्या उसी वजह से भाई-भाई का कत्ल करेगा—खून बहायेगा—इतनी सी बात को लेकर राजा गोविन्द माणिक्य।

'महाराज मैं आपके पैरों मे पड़कर पूछता हूँ कि मुझे किन-कर्त्तव्य-विमूढ़ न बनाइये। क्या वास्तव में आपको सपने मं मां ने कहा है कि बिना राज-रक्त के उसकी तृप्ति नहीं होगी।

'क्या तुम मुझपर अविश्वास करते हो। रघुपति बोला।

जयसिंह ने कहा।

'नहीं तो गुरुदेव के प्रति मेरा विश्वास अब भी अडिग है। किंतु नक्षत्र राय का भी तो जन्म राजकुल में हुआ है।

देवताओं का सुपन केवल संकेत मात्र होता है। रघुपति ने बताया।

'सारी बातें सुनी नहीं जाती, बहुत कुछ समझ लिया जाता है। स्पष्ट ही देखा जा सकता है कि गोविंद माणिक्य से देवी मां असन्तुष्ट है। उनके असन्तोष से सभी लक्षण पैदा हो गए हैं। इसलिए जब देवी राज-रक्त देखना चाहती है तो इसका यही अर्थ हुआ कि उनका मतलब गोविंद माणिक्य के रक्त से ही है।

अगर यह सच है तो मैं राज रक्त लाऊंगा—नक्षत्र राय को

पाप में लुप्त नहीं होने दूंगा।

'देवी की आज्ञा के पालन में कोई पाप नहीं।'

'पुन्य तो है। मैं उसी पुन्य का उपार्जन करूंगा।'

'बेटा तभी तो तुम्हें मैं सत्य का पालन करने को कहता हूँ। मैं तुम्हें बचपन से ही अपने बेटे से भी अधिक प्यार करता रहा हूँ और तुम्हारा पालन करता आया हूं। मैं तुम्हें नहीं खोऊंगा नक्षत्र राय अगर गोविंद माणिक्य का खून करके राजा हो जाए तो कोई उसे कुछ नहीं कहेगा। लेकिन अगर तुम राजा के शरीर पर हाथ उठाओगे तो मैं तुम्हें पा न सकूंगा।'

'मेरा मोह, मैं तो एक तुच्छ प्राणी हूँ। मेरे स्नेह से आप एक चीटी तक की भी हत्या नहीं कर सकेंगे। मेरे स्नेह के कारण अगर आप पाप में लुप्त हों तो आपके उस प्रेम का मैं अधिक दिनों तक उपभोग न कर सकूंगा। इस प्रेम का परिणाम अधिक ठीक नहीं होगा।'

'अच्छा—अच्छा इस बारे में फिर बात होंगी। कल। नक्षत्र राय के आने पर जो कुछ होगा उसकी व्यवस्था कर दी जायेगी रघुपति बोला।

किंतु जयसिंह ने मन ही मन प्रतिज्ञा कर ली कि राज–रक्त मैं ही लाऊंगा—माता के नाम पर, या गुरूदेव के नाम पर मैं भ्रात–हत्या नहीं होने दूंगा।

गोमती नदी के दक्षिण की ओर एक जगह किनारा बहुत ऊंचा था बारिश की धार और छोटे–छोटे स्त्रोतों में उस ऊंची जमीन को कई गड्ढ़ों में और गफाओं में विभक्त कर रखा

था ।

इससे कुछ दूर लगभग अर्धचन्द्राकार रूप में शाल और खम्भारी के वृक्षों ने इस हिस्से को घेर रखा था ।

गोविंद माणिक्य यहां रोजाना घूमने आते थे । उस समय उनके साथ कोई नहीं होता था ।

कभी कभीं ताता को वह साथ ले आते थे ।

ताता को अब ताता कहने को मन नहीं होता था । एक ही था जिससे ताता का सम्बोधन अच्छा लगता था वह तो अब रहा ही नहीं था ।

'पाठकों के लिए भी अब ताता का कोई महत्व नहीं ।

राजा ताता को अब ध्रुव नाम से पुकारने लगे थे ।'

इस वक़्त ध्रुव उनके पास ही बैठा था कि ठीक उसी समय शस्त्रों से सुसज्जित जयसिंह गुफा मार्ग से बाहर आकर राजा के सामने आ गया ।

राजा ने जयसिंह की तरफ अपनी बांहें फैला दी ।

'आओ जयसिंह आओ ।'

जयसिंह ने जमीन पर झुककर राज़ा को प्रणाम किया ।

'महाराज, आपसे एक निवेदन है ।'

'कहो—क्या बात है ।'

'माँ आपसे अप्रसन्न है ।'

'क्यों ¿ मैंने ऐसा क्या किया ।'

'महाराज बलिदान बन्द करके आपने मां की पूजा में विघन डाला है ।'

'जयसिंह, यह हिंसा की लालसा क्यों ? मां की ही गोद में तुम उसकी ही सन्तान का रक्त—पान करके उसे प्रसन्न करना चाहते हो ।'

जयसिंह राजा के पैरों के पास बैठ गया ।'

ध्रुव उसकी तलवार से खेलने लगा।

'क्यों महाराज, शास्त्रों में बलिदान की व्याख्या
उसने कहा।

शास्त्रों का विधि पुर्वक पालन कौन कर सकता है
अपनी प्रवृतियों के अनुसार उसकी व्याख्या किया करते हैं।
समय लोग देवी के सामने बलिदान का कींचड़ से भरा रक्त
में पोतकर जोरों से चिल्लाते हैं और भयंकर उल्लास में नाच
रहते हैं। उस वक्त क्या वे देवी की पूजा करते हैं। नहीं, इस
तरह तो वे अपने हृदय में जो हिंसा रुपी राक्षसी रहती है। उस
की पूजा करते हैं। हिंसा के निहित बलिदान देश शास्त्रों का
नियम नहीं। बल्कि उल्टे अपनी हिंसा की भावना को ही बलि
कर देना शास्त्रों ने लिखा है।'

जयसिंह कुछ क्षणों तक खामोश रहा फिर बोला—'मैंने मां
के ही मुख से सुना है और इसमें कोई शक नहीं हो सकता।
उन्होंने खुद ही कहा है कि वे महाराज का खून चाहती हैं।

राजा हस पड़े।

'यह रघुपति की कारगुजारी है।'

जयसिंह यह बात सुनकर चौंक पड़ा।

फिर वह अधिक कातर स्वर में बोला।

'नहीं, महाराज मुझे अब अधिक शक की ओर न ले जाइये,
किनारे से ढकेल कर समुन्द्र की तरफ न फेंकिये। आपकी बात
से मुझे हर ओर अन्धेरा ही अन्धेरा दिखायी दे रहा है। आदेश
माँ का हो या गुरू का मैं उसका पालन करूंगा?'

यह कहकर झपटकर उसने तलवार निकाल लीं।

तलवार धूप में विजली की तरह चमक उठी।

ध्रुव रो पड़ा।

उसने अपने छोटे –२ हाथों में राजा को कसकर पकड़

लया।

राजा ने भी उसे हृदय से लगा लिया। उन्होंने जयसिंह की ओर कोई ध्यान नहीं दिया।

जयसिंह ने तलवार दूर फेंक दी।

ध्रुव की पीठ पर हाथ फेरकर बोला।

'डरो मत बेटा, कोई डर नहीं है। मैं जा रहा हूं। तुम इसी महान आत्मा के आश्रय में रहो। इस विशाल वक्ष स्थल से तुम्हें कोई अलग न करेगा।'

राजा को प्रणाम करके वह चल दिया।

जाते समय वह राजा से कह गया।

'महाराज, आपको मैं सावधान किए देता हूँ, आपके भाई नक्षत्र राय आपके वध की तैयारी कर रहे हैं।

राजा हंसकर बोले—

'वह मेरा कभी वध नहीं कर सकता। मुझे वह बहुत प्यार करता है।

जयसिंह ने कुछ न कहा।

बादलों ने सूर्य को ढक लिया था।

नदी के ऊपर काली छाया पड़ने लगी थी।

***

मन्दिर पास में ही था।

जयसिंह नदी का निर्जन किनारा पकड़े धीरे धीरे मन्दिर की ओर चला जा रहा था।

वह सोच रहा था।

'मेरा शक अब कौन दूर करेगा—कौन सा काम अच्छा है

और कौन सा बुरा है। कौन बतायेगा मुझे। इस संसार अनेक मोह भरे मार्गों पर खड़ा होकर मैं किससे पूछूंगा कि कौन सी राह ठीक है। संसार के इस विस्तार में मैं अन्धा और अकेला खड़ा हूं आज मेरी लाठी भी टूट गई।

एकाएक पानी बरसने लगा।

मन्दिर में वह पहुंचा तो रघुपति पूजा खत्म करके मन्दिर के बाहर बैठा था।

पास पहुंचकर उसने कुछ कहा।

बदले में रघुपति बोला।

'मां मेरे ही द्वारा तो अपने सेविकों को आदेश देती है, वह खुद थोड़े हीं बोलती है।'

'तब आप सामने आकर क्यों नहीं आदेश देते।'

'खामोश रहो रघुपति बोला।

'मैं सोचता हूं, और क्या करता हूँ, तुम भला इसको क्या समझोगे। इस तरह जो मुंह में आ जाये एकदम न कह दिया करो। मेरे हुक्म का पालन करना ही तुम्हारा धर्म और कार्तव्य है। इसके विषय में तुम्हें प्रश्न करने का कोई हक नहीं है।

जयसिंह चुप रहा।

किंतु उसका सन्देह बढ़ता ही जा रहा था।

कुछ देर बाद वह बोला—

'आज सवेरे माँ से मैंने कहा था कि अगर वह मुझे आज्ञा नहीं देगी तो मैं किसी भी हालत में राज-—हत्या नहीं होने दूंगा मैं इसमें बाधा डाल दूंगा? जब अच्छी तरह मैंने समझ लिया कि मां ने आज्ञा नहीं दी है तो महाराज के पास जाकर मैंने नक्षत्र राय का संकल्प बता देना ही उचित समझा और मैंने उनको सावधान भी कर दिया।

रघुपति आग बबूला हो उठा—

अपने गुस्से को दबाकर वह बोला।

'मन्दिर में चलो ।'

वे मन्दिर में आ गए।'

रघुपति ने कहा।

'मां के चरण छुकर शपथ लो कि आषाढ़ सुदी चतुर्दशी के पहले ही राज-रक्त लाकर मां के चरणों पर चढ़ाओगे।'

जयसिंह ने गरदन नीची कर ली।

वह चुप रहा।

एक बार उसने गुरु की ओर देखा और फिर मां की मूर्ति को देखा।

आखिर में मूर्ति का स्पर्श करके धीरे से बोला।

'आषाढ़ सुदी चतुर्दशी के पहले ही राज-रक्त लाकर इन चरणों पर चढ़ाऊंगा।'

वापस लौट कर महाराज ने नियमित राज कार्य सम्पन्न किया।

बादलों के कारण प्रातः कालिन सूर्य का प्रकाश गायब हो गया था।

महाराज अत्यन्त उदास थे।

नक्षत्रराय हर रोज राज सभा में मौजूद रहता था, लेकिन आज वह नहीं आया था।

राजा ने उसको बुलवाया।

उसका जवाब आया कि आज तबियत ठीक नहीं है।

राजा खुद नक्षत्रराय के कमरे में गये।

वह अपना सिर राजा के सामने नहीं उठा सका।

एक लिखे हुए कागज कोदेखकर अपनी व्यस्तता प्रकट करने लगा।

राजा ने पूछा—

'कैसी तबियत है, तुम्हारी।'

उसने इधर-उधर देखते हुए कहा—

'कोई महत्वपूर्ण बात नहीं।' बस ऐसे ही, जरा सी थकान सी हो गई है।'

राजा दुखित होकर उसके चेहरे को देखने लगे।

वे सोचने लगे। आज स्नेह के घर में हिंसा घुस आई है। वह सांप की तरह छिपना चाहती है, पर किसी को मुंह नहीं दिखा सकती।

क्या हमारे जंगलों में हिंसक पशुओं की गिनती कम हो गई।

'क्या अब मनुष्य मनुष्य से डरेगा।

नक्षत्र मेरे इतने पास होते हुए भी अपने मन में ऊपर की छुरी पर धार लगा रहा है।

गहरा निश्वास छोड़कर, महाराजा सोचने लगे।

इस स्नेह और प्रेमरहित तथा मार—काट से भरे हुये राज में जीवित रहकर मैं अपने कटुम्ब के लोगों से और अपने इस भाई के मन में हिंसा और द्वेष की आग ही जला रहा हूँ?

मेरे सिंहासन के चारों ओर रहने वाले मेरे अत्यन्त आत्मीय भी आज मुझे देखकर भीतर ही भीतर दांत किटकिटा रहे हैं। जंजीर में बन्धे कुत्तों की भांति मुझ पर झपट पड़ने का मौका ढूंढ रहे हैं।

खड़े होकर महाराज ने पूरी गम्भीरता से कहा—

'आज हम गोमती के किनारे निर्जन वन में घूमने के लिए

चलेंगे।'

राजा के इस गम्भीर हुक्म के विरुद्ध नक्षत्र राय कुछ कह ना सका।

संशय और आशंका से उसका मन व्यग्र हो उठा।

राजा उसे चुपचाप घूर रहे थे।

समय हो गया।

बादल उस समय भी थे।

राजा अपने भाई को साथ लेकर पैदल ही जंगल की ओर चल दिये।

शाम होने में कुछ समय शेष था।

—किन्तु बादलों के कारण सन्धया का भ्रम हो रहा था।

कौवे जंगल में लौटकर—'कांव–कांव' कर रहे थे।

आसमान में दो चार चीलें अब भी चक्कर लगा रही थी।

दोनों जगल में घुसे तो नक्षत्रराय को रोमांच होने ला।

जंगल के बड़े—बड़े पेड़ एक दूसरे से सट कर खड़े थे।

पेड़ कुछ बोलते तो नहीं, किन्तु स्थिरता पूर्वक जैसे वे प्राणियों की प्रति ध्वनि सुनते रहते हैं।

वे आगे बढ़ते रहे।

नक्षत्र राय का दिल धड़क रहा था।

जंगल के बीच एक खुली जगह थी।

एक तालाब भी था।

तालाब के किनारे सहसा घूमकर राजा खड़े हो गये और बोले—

'ठहरो ?'

नक्षत्रराय चौंक कर रुक गये।

उसे लगा मानों राजा का हुक्म सुनकर समय की गति भी रुक गई है। जैसे जंगल के सारे वृक्ष सिर झुका कर खड़े हो गये हैं।

पृथ्वी और आसमान सांस रोककर चुप हैं।

हर ओर गहरी निस्तब्धता छाई हुई थी।

'सिर्फ ठहरो।'

की प्रतिध्वनि आ रही थी, जैसे शब्द विद्युत धारा की भांति प्रत्येक वृक्ष तक प्रवाहित हो रहा था।

जंगल का पत्ता—पत्ता जैसे उस शब्द से कांप रहा था।

नक्षत्रराय भी वृक्षों की भांति चुप खड़े थे।

राजा ने नक्षत्रराय के चेहरे पर स्थिर दृष्टि से देखते हुए गम्भीर स्वर में कहा—

'तुम मुझे मारना चाहते हो।'

नक्षत्रराय चुप···

राजा ने प्रश्न दौबारा दोहराया।

'क्यों मारना चाहते हो भाई ? राज्य के लोभ से, तुम समझते हो कि सिर्फ सोने का सिंहासन, हीरे का मुकुट और राज्य छत्र ही राज्य है ? इस मुकुट, इस छत्र और इस राज पाट का का भार कितना पीड़ा जनक होता है, यह तुम्हे मालूम है। लाखों लोगों की चिताए इस हीरे के मुकुट में ढ़ककर रखी हुई हैं। अगर राज पाना चाहते हो तो हजारो लोगों का दुख, अपना दुख समझो।···

'उनकी विपत्तियों को अपनी विपत्ति समझो।

उनकी दरिद्रता को अपनी दरिद्रता समझकर उनका भार

उठाओ । जो ऐसा कर सकता है वही राजा बन सकता है ।

चाहें वह झोंपड़ी में रहे या राजमहल में । जो आदमी सब लोगों को दिल से अपना समझने में समर्थ हो सकता है, उसी का तो सारा संसार है ।

इस धरती का जो दुख दूर करे वही धरती का राजा है ।

जो पृथ्वी का खून और उसकी संपदा चूसता है वह तो चोर है । हजारों अभागे प्राणियों के आंसू दिन-रात उसके सिर पर बरसते रहते हैं । उस अभिशाप के प्रवाह से कोई राजछत्र उसकी रक्षा नहीं कर सकता ।

उसके प्रचुर राज्योपभागों में अनेक भूखें लोगों की भूख शामिल है, अनाथो की दरिद्रता को जलाकर ही वह सोने के अलंकार धारण कर पाता है ।

पृथ्वी का स्पर्श करने वाली उसकी राजशी पोशाकों में ठण्ड में ठिठूरते हुए सैकड़ों दीनों की गुदाईयां भरी हुई हैं । राजा को मार राजत्व नहीं मिल सकता, भाई ! संसार को वश में करने पर ही असली राजा बना जा सकता है ।

गोविन्द माणिक्य यह कहकर रुक गये ।

चारों ओर सन्नाटा छाया हुआ था ।

नक्षत्रराय अभी भी सिर नीचा किये हुये था ।

राजा ने म्यान से तलवार निकाल कर नक्षत्रराय के सामने रख दी और बोले—

'भाई यहां कोई नहीं है, कोई गवाह नहीं है । भाई अगर भाई का सीना छुरे से छलनी करना चाहता है तो उसके लिए यही जगह बेहतर है । यहां न कोई तुम्हें रोकेगा न कोई तुम्हारी निंद करेगा । तुम्हारी और मेरी नाड़ियों में खून एक-सा ही

है। एक ही मां-बाप का खून…

तुम अगर इस खून को बहाना चाहते हो वहाओ, किन्तु यह काम तुम नगर में मत करना। पाप का आखिर कहां होता है, कोन जाने !

पाप का एक ही बीज जहां गिरता है, वहां देखते-ही-देखते हजारों-वृक्ष उग आते हैं।

धीरे-२ यह सुन्दर मानव समाज एक जंगल के रुप में बदल जाता है।

यह सब कोई समझ भी नहीं पाता इसलिए नगर और ग्राम में जहां निष्कप्ट भाव से एक भाई—प्रेम पूर्वक दूसरे को गले लगाता है, वहां भाई का खून मंत वहाना। इसलिए मैं तुम्हें जंगल में ले आया हूँ ?'

उन्होंने अपने भाई के हाथ में तलवार थमा दी।

नक्षत्रराय के हाथ से तलवार छूटकर नीचे गिर पड़ी।

दोनों हाथ से मुंह ढ़क कर वह रो पड़ा।

फिर भरे हुए गले से बोला।

'भैया मैं दोषी नहीं हूं ! यह वात कभी मेरे मन में नहीं उठी।'

राजा ने उसे गले से लगाकर कहा—

'यह मैं जानता हूं ! तुम मेरी हत्या नहीं कर सकते तुम्हें किसी ने बहका दिया है'

'मुझको रघुपति ने भड़काया था।'

'रघुपति से दूर रहा करो।'

'मैं अब यहां नहीं रहना चाहता हूँ, रघुपति के पास से भाग जाना चाहता हूँ ?'

'तुम मेरे पास ही रहो—भला रघुपति तुम्हारा क्या कर सकता है।'

'नक्षत्रराय ने राजा का हाथ दृढ़ता से थाम लिया । जैसे यह शंका उसके मन में होने लगी कि कहीं कोई उसे खींच न ले जाये ।

●●●

मन्दिर में संध्या की आरती खतम करके एक दिया जलाये रघुपति और जयसिंह मन्दिर के बाहर बैठे थे ।

दोनों अपने-२ विचारों में लीन थे ।

दिये के हल्के प्रकाश में उनके चेहरों की राजा को हल्की छाया मात्र दिखाई पड़ रहा था ।

नक्षत्रराय रघुपति की तरफ देख रहा था । वह राजा के पीछे खड़ा था ।

राजा ने उसको अपने पास खींच लिया ।

नक्षत्रराय ने रघपति की तरफ देखा—वह घूरकर उसे ही देख रहा था ।

राजा ने रघुपति को प्रणाम किया ।

रघुपति ने परणाम स्वीकार करते हुये कहा—

'जय हो राजा कुशल तो हैं ।'

'आप आर्शीवाद दें तो राज्य में अमंगल कैसे हो सकता है। राज्य में मां की सन्तानें सद्‌भाव और प्रेम से हिल-मिल कर रहती हैं । यहां भाई-को-भाई से अलग कोई नहीं कर सकता । जंहां प्यार है, वहां हिंसा नहीं पनप सकती ! राज्य के अमंगल की आशा से आया हूँ । पाप मुक्त संकल्प संघपर्ण से आग भड़क सकती है । कृप्या उसको वुझाईये और शांति की वर्षा कीजिये तथा जमीन को शीतल कीजिये ।'

रघुपति बोला—

'देवता की क्रोधाग्नि के भड़क जाने पर भला उसे कौन शांत कर सकता है। एक अपराधी के निमित्त हजारों निरपराध उस आग में जल जाते हैं।'

'यही तो डर है, इसलिए तो काँप रहा हूँ। लाख समझाने पर भी कोई इस बात को नहीं समझता। क्या आप नहीं जानते कि इस राज्य में देवताओं के नाम पर, उन्हों के नियमों का उलंघन किया जा रहा है?'

इसी कारण अमंगल की आशंका से आज मैं संध्या के समय यहां आने पर मजबूर हुआ हूं। इस जगह पर पाप के पेड़ को लगाकर हमारे इस सुखी राज्य में आप देवताओं का प्रकोप न आमन्त्रित कीजिए। मैंने आपको सारी बाते बता दी हैं।

यहीं कहने के लिए मैं यहां आया था।

रघुपति कुछ बोला नहीं।

अपने जनेउ पर हाथं फैरता रहा वह।

राजा प्रणाम करके नक्षत्रराय का हाथ पकड़ कर बाहर आ गये।

उनके साथ ही जयसिंह भी बाहर निकल आया।

मन्दिर में रह गया सिर्फ एक दिया, रघुपति और उसकी परछाई।

आसमान अन्धेरे से भर उठा था।

राजा अपने विचारों में खोये हुए जाने-पहचाने रास्ते पर बढ़े जा रहे थे।

सहसा किसी ने उन्हें पीछे से पुकारा—

'महाराजा'

राजा ने मुड़कर कहा—

'कौन है।

'आपका तुच्छ सेवक, जयसिंह।' आवाज आई महाराज आप मेरे गुरू हैं, मेरे मालिक हैं। आपके अलावा आज मेरा कोई नहीं।

आप अपने भाई के साथ मुझे भी ले चलिए, मेरी बांह भी थाम लीजिए महाराज, मैं भी अन्धेरे में भटक रहा हूं ? अपना भला-बुरा मैं सोच नहीं पाता, कभी ईधर हो जाता हूं तो उधर, मेरा कोई रखवाला नहीं है।'

अन्धेरे में जयसिंह की आँखों से आंसू टपकने लगे जिन्हें कोई न देख सका।

केवल जयसिंह के मुख, से निकली आवाज ही राजा सुन पाये।

हवा चंचल समुन्द्र की भांति कांपने लगी।

राजा ने जयसिंह का हाथ पकड़ लिया।

'चलो, मेरे साथ महल में चलो।'

● ● ●

दूसरे दिन जब जयसिंह मन्दिर से लौटा तब तक पूजा का समय हो चुका था।

रघुपति दुखी, अकेला बैठा था।

इसके पहले कभी इस तरह का अनियमित काम नहीं हुआ था।

पास आकर जयसिंह गुरू के पास नहीं गया। वह सीधा अपते बगीचे में चला गया। वह पौधों के बीच जाकर बैठ गया।

चारों तरफ फूलों से लदे हुए पौधे खड़े थे।

हर ओर हरियाली फैली हुई थी।

अत्यन्त मधुर शब्द सुनायी दे रहे थे। प्रकृति अपने प्रेम पूर्ण आलिगन से अद्भूत शीतलता प्रदान कर रही थी।

प्रकृति के इस शान्तिदायी अन्नतपुर में बैठकर जयसिंह सोचने लगा।

वह मन ही मन राजा के उपदेश की आलोचना कर रहा था।

अचानक पीछे से रघुपति ने आकर उसकी पीठ पर हाथ फैरा।

जयसिंह चौंक पड़ा।

रघुपति उसके पास बैठ गया।

'बेटा—वह हौले से बोला।

'तुम्हारे विचार ऐसे कैसे हो गये—क्या बिगाड़ा है मैंने तुम्हारा जो तुम मुझ से इस प्रकार दूर होते जा रहे हो।

जयसिंह ने कुछ कहना चाहा।

रघुपति ने उसे कुछ वोलने न दिया और स्वयं बोला—क्या तुमने एक क्षण के लिये भी मेरे स्नेह, प्यार में कभी पायी ? मैंने कोई अपराध किया है—और अगर किया ही है तो भी तुम्हारे गुरू के समान हूँ तुम्हारे पिता के बराबर हूं। मैं तु माफी चाहता हूँ मुझे क्षमा कर दो।'

जयसिंह जैसे अजाहास सा होकर चौंक पडा।

रघुपति के पांव पकड़कर वह रोने लगा।

बोला।

पिताजी मैं कुछ नहीं जानता ! कुछ नहीं समझता मैं। मुझे कुछ सुझायी नहीं देता।'

रघुपति ने उसका हाथ थामते हुए कहा।

'बेटे मैंने तुझे बचपन से पाला पोसा है। एक पिता से भी ज्यादा तुम्हें प्यार दिया शिक्षा दी है। तुम पर मैंने पूरा विश्वास किया है और सभी मंत्रनाओं में मैंने तुम्हें अपना सहयोगी बनाया कौन आज तुमसे मुझे दूर किए जा रहा है। इस प्यार और

स्नेह भरे वन्धन को कौन तोड़ रहा है। इस पर मेरा अधिकार कौन खत्म करता जा रहा है। मुझे तुम उस पापी का नाम तो बता डालो।

जयसिंह बोला।

'गुरुदेव, आपके पास से मुझे कोई भी अलग नहीं कर रहा है। स्वयं आपने मुझे दूर हटा दिया है। मैं तो घर में ही था। आपने ही मुझे वाहर निकाल फेंका।

आपने ही तो कहा था कि यहां कौन किसका पिता है, कौन किसकी माता और कौन किसका भाई है।

आप ही कहते है कि इस जमीन पर कोई वन्धन नहीं। स्नेह और प्रेम का पवित्र अधिकार भी नहीं।

यहाँ लोग हिंसा करते हैं खून खरावी करते हैं भाई —२ में रंजिस होती है। वही तो यह प्यासी लोभी खून के लालच में अपना खप्पर लिये खड़ी रहती है।

आपने मुझे मां की गोद से हटाकर इस राक्षस प्रदेश में क्यों निर्वासित कर दिया।

रघुपति कुछ क्षणों तक खामोश रहा।

फिर दीर्घ निश्वास लेकर बोला—

'तुम पूरी तरह से स्वाधीन होकर अपने ऊपर से मेरे सारे अधिकारों को हटा दो अगर इसी में तुम सुखी हो तो जाओ, सुखी रहो।'

रघुपति जाने लगा।

जयसिंह ने उसके पाँव पकड़ लिये।

'नहीं नहीं! आप मुझे भले ही त्याग दें किन्तु मैं आपको [न]हीं छोड़ूंगा, आप रहें, मैं आपकी सेवा में रहूँगा, आपके रास्ते [क]ो छोड़कर मेरे लिये अब और कोई सा रास्ता नहीं।

रघुपति ने उसे उठाकर सीने से लगा लिया

वहुत सारे लोग मन्दिर में इक्ट्ठे हुए थे।

कोलाहाल सा मचा हुआ था।

रघुपति शुष्क स्वर में गुर्राया—

'तुम लोग यहां क्या करने आये हो।'

'हम लोग देवी के दर्शन करने आए हैं। सब ने एक साथ कहा।

'यहां देवी कहां है। रघुपति ने कहा।

'वे तो इस राज्य को छोड़कर चली गयी। तुम लोगों में से कोई भी देवी को नहीं रोक सका। वे चली गयी हैं।

यह सुन लोगों में हल चल सी मच गयी थी।

'क्या कहते हैं पुजारी जी।

'हम लोगों ने क्या जुर्म किया।'

'क्या मां अब किसी भी तरह खुश न होगी।

एक आदमी बोला—

'मेरे भाई का लड़का था इसलिये मैं पूजा चढ़ाने न आ सका।

उसका पूरा विश्वास था कि उसी के ही कारण देवी यहां से चली गयी।

मैंने अपने दो बकरों को बलि चढ़ाने का वायदा किया था, किन्तु घर दूर होने की वजह से आ नहीं सका। बलि चढाने में देर करने की वजह से ही राज्य में ऐसा अमंगल हुआ है यह सोचकर वह दुखी हो उठा!

'गोबर्धन ने माता की मनौती मांगी थी, वह उसे पुरा न कर

सका। इसी का उसे दण्ड मिला है, उसकी तिल्ली बढ़ गयी है और छः माह से विस्तरा चाट रहा है।

और उन लोगों ने सोचा कि गोवर्धन की चाहे जो दशा हो लेकिन मां को यहीं रहना चाहिये।

इतने में एक मोटा सा पहलवान सा आदमी आगे आया और सबको डांटकर रघुपति से बोला।

'महाराज, मां क्यों चली गयी ? हम लोगों से क्या अपराध हुआ है ?

रघुपति गुर्राया।

'तुम लोग माता के लिए एक बूंद खून तक नहीं दे सके, यही तुम्हारी भक्ति है

सब लोग खामोश हो गये।

एक आदमी धीरे से बोला।

'राजा ने ही मना किया है, हम लोग क्या कर सकते हैं

जयसिंह पत्थर की मूर्ति की भांति चुप बैठा था।

रघुपति जोर जोर से कह रहा था।

'राजा कौन होता है, क्या माता का महत्व राजा के सोने सिंहासन से कम है। अगर ऐसा है तो तुम लोग इस मातृहीन देश में अपने राजा को लेकर रहो। देखे कौन तुम्हारी हिफाजत करता है।

आपस में लोग काना-फूसी करने लगे।

सभी बड़े चिन्तित थे।

रघुपति ने फिर भड़काया।

'तुम लोगों ने राजा को बड़ा मानकर अपनी माता को अपमानित किया है। लेकिन याद रखो इससे तुम्हें सुख नहीं मिलेगा तीन साल बाद ही इस राज्य में तुम्हारा नामो निशान न रहेगा तुम्हारे वंश में कोई दिया जलाने वाले भी न रहेंगे।

जनता में सरसराहट होने लगी।
भीड़ बढ़ती जा रही थी।

अन्त में सब लोगों ने हाथ जोड़कर रघुपति से कहा ।

'सन्तान अगर जुर्म करती है तो मां उसे दण्ड देती है ! लेकिन इस तरह अचानक छोड़कर चली जाएगी, यह समझ में नहीं आता। अच्छा महाराज आप बताए कि क्या करने से मां पुनः लौट सकती है।

रघुपति ने इसका तत्काल उत्तर दिया।

अपने राजा को जब तक इस राज्य से निकालोगे नहीं। तब तक माँ वाहस नहीं लौट सकती ।

लोगों की काना फूसी एकाएक बन्द हो गयी !
सन्नाटा सा छा गया वहां !

सब वहां एक-दूसरे का मुख ताकने लगे !
जैसे बोलने की कोई हिम्मत ही न कर पा रहा था !

रघुपति ने चिल्लाकर कहा !
'तुम सब मेरे साथ आओ ! मन्दिर के अन्दर चलो !'
सब लोग मन्दिर के आंगन में आ गए !
रघुपति ने मन्दिर का दरवाजा खोला !
सब लोग दंग रह गए !

मूर्ति का मुंह दिखाई नहीं दे रहा था ! उसकी पीठ दर्शकों की ओर थी।

मां विमुख हो गयी थी।
सहसा सारे लोग रोने लगे।

'मां हम पर कृपा करो। हाय, हमसे क्या अपराध हुआ है।

लोग चिल्लाने लगे।
कुछ लोग बेहोश हो गए।

औरतो ने अपनी छातियां पीटनी चालु कर दी ।

युवक कांपने लगे ।

दोपहर का सूर्य तेज हो गया था ।

मन्दिर के प्रागॉण में लोग रोते रहे, चिल्लाते रहे ।

तब जयसिह ने डरते हुए रघुपति से कहा ।

'प्रभु, क्या मैं एक बात भी नहीं कर सकता ?'

'बिल्कुल नहीं ।'

'क्या संदेह का कोई कारण ही नहीं ।'

'नहीं ।'

जयसिह ने मुट्ठी भींचकर कहा ।

'यह मैं सब कैसे मान लूं ।'

'तुम । रघुपति गुर्राया ।

जयसिह ने अपने सीने पर हाथ रखकर कहा, ओह मेरी छाती फटी जा रही है । यह कहकर वह जनता के बीच से होता । वहां से भागा चला गया ।

दूसरे दिन चतुदर्शी थी ।

इसी रात चौदह देवताओं की पूजा होने वाली थी ।

सुबह जब सूरज ताल वन के ऊपर उटा तो तब तक आकाश में बादल नहीं थे ।

सुनहरी किरणों से भरे हुए उस आन्नदमय वन में जब जयसिह बैठा, तो उसे पुरानी स्मृतियां याद हो आयी इसी वन में मन्दिर की इन्ही सीढ़ियों पर उसका बचपन बीता था ।

बचपने के बे सभी मधुर दृश्य आज फिर से जैसे उसको

अपने पास बुला रहे थे। किंतु उसका मन कहता था।

'मैं तो यात्रा पर चल पड़ा हूँ। मैंने विदा ले ली। अब लौट नहीं सकूंगा ?'

मन्दिर के सफेद पत्थरों पर धूप चमक रही थी। उसकी बाँयी दीवार पर मौलश्री के पेड़ की डालियों की छाया हिल रही थी।

आज की सुबह ही सुबह की धूप में मन्दिर जयसिंह को उसी तरह बेसुध मालूम हुआ।

काली की उसी मूर्ति को आज फिर एक बार मां कहकर पुकारने की इच्छा हुयी लेकिन अभिमान से उसका दिल भर आया और आंखों से आंसू ढलकने लगे।

रघुपति को अपनी ओर आता देखकर उसने आंसू पोंछ ले।

उसने गुरु को प्रणाम किया और खड़ा हो गया।

आज पूजा का दिन है। रघूपति बोला,तुमने मां के चरण छूकर जो प्रतिज्ञा की थी वो याद है ना ?'

'जी हां।

'तो प्रतिज्ञा का पालन करोगे न।'

अवश्य।'

सावधानी से काम लेना बेटा। संकट का समय है, तुम्हारी रक्षा के लिये ही मैंने प्रजा को राजा के खिलाफ भड़काया है।

जयसिंह चुपचाप उसका मुख ताकता रहा।

रघुपति ने सर पर हाथ रखकर कहा, मैं तुम्हें आर्शीवाद देता हूं तुम बिना बाधा के अपना काम पूरा करोगे? यह कहकर वह चला गया।

दोपहर बाद।

राजा अपने कमरे में ध्रुव क पास खेल

ध्रुव के कहने पर महाराज अपने सर पे से अपना मुकुट उतारते और पहन रहे थे। ध्रुव हंस रहा था, राजा मुस्कुरा कर कह रहे थे—'मैं अभ्यास कह रहा हूं ? जनता की आज्ञा-पाते ही जिस तरह से मैं मुकुट पहन लेता हे, उसी प्रकार उसका आदेश पाकर उतार भी सकता हूँ ? मुकुट धारण करना कठिन है, उससे भी कठिन है उसका परित्याग।

अन्त में खेलते—२ राजा ने अपना मुकुट ध्रुव के सिर पर रख दिया।

उसका आधा चेहरा मुकुट में छिप गया।

मुकुट सहित उसने अपना सिर हिलाकर राजा को आदेश दिया।

'एक कहानी सुनाओ।

'कौनसी···।'

'दीदी की कहानी सुनाओ ?'

कहानी मात्र को वह दीदी की कहानी मानता था। वह जानता था कि उसकी दीदी जो कहानी कहा करती थी, उसके अलावा संसार में कोई और कहानी नहीं है।

राजा ने एक श्रेष्ठ पौरानिक कहानी शुरू की।

हिरण्यकशिपु नामक एक राजा था···।

तभी नक्षत्र राय ने वहां आकर कहा—

'सुना है, महाराज ने मुझे राज्य-सम्बन्धी किसी कार्य के लिये बुलाया है। मैं आज्ञा की प्रतिक्षा में हूं।

राजा ने कहा—

'थोड़ी देर जरा ठहरो, मैं कहानी खत्म कर लूं।'

ध्रुव के सिर पर मुकुट देखकर नक्षत्र राय को अच्छा नहीं लगा।

तभी ध्रुव ने उसकी तरफ देखकर कहा—

'मैं राजा हूँ…।'

यह सुनकर नक्षत्र राय ने कहा—

'यह बुरी बात है, तुम्हें महाराज का यह मुकुट नहीं पहनना चाहिये।'

तत्काल उसने उसके सिर से मुकुट उतारा और राजा को देने के लिये आगे बढ़ा। महाराज ने जल्दी से कहा—

मैंने सुना है कि पुजारी ने झूठे प्रचार से जनता में असन्तोष पैदा कर दिया है। तुम खुद नगर में जाकर इस बात की तहकीकात करके, मुझे खबर दो।

'जो हुक्म!' कहकर नक्षत्र राय चला गया।

इतने में द्वारपाल ने आकर कहा।

पुजारी रघुपति के सेवक जयसिंह महाराज के दर्शनार्थ द्वार पर खड़े हैं।

राजा ने उसको अन्दर लाने की आज्ञा दी।

जयसिंह ने महाराज को प्रणाम करके कहा।

'महाराज, मैं बहुत दूर जा रहा हूं। आप हमारे राजा हैं, गुरु हैं, इसलिये आपका आर्शीवाद लेने आया हूँ।'

'कहां जाओगे, जयसिंह?'

कह नहीं सकता महाराज कि कहां जाऊंगा! इनता कहकर वह रुका, किन्तु राजा को कुछ कहने के लिये उद्यत देखकर बोला—

'महाराज, कृपा मुझे रोकिये मत। आपके रोकने से मेरी यात्रा सफल न होगी। आप आर्शीवाद दीजिये कि इस जगह रहने से मेरे मन में जो कुछ सषंय है वहां पहुंचने पर दूर हो जाये।'

'कब जाओगे।'

आज शाम को, ज्यादा समय नहीं है महाराज अब विदा लेता हूं। इतना कहते-२ उसकी आंखों से दो बून्द आंसू निकल कर राजा के पांव पर गिर पड़े। जब जयसिंह जाने के लिये मुड़ा तो ध्रुव ने उसका कपड़ा खींचकर कहा—

'तुम मत जाओ।'

जयसिंह हंसकर लौट पड़ा।

ध्रुव को गोद में उठाकर उसे चुमता हुआ बोला, मै किसके पास रहूँगा बेटा। मेरा कौन है।

'मैं हूँ, मैं राजा हूँ।'

'तुम तो राजाओं के भी राजा हो। तुम्हीं ने तो सबको बांध रखा है।'

फिर ध्रुव को गोद से उतार कर जयसिंह कमरे से बाहर चला गया।

महाराज कुछ देर तक गम्भीरता से विचार करते रहे।

+++

आज चतुर्दशी थी।

आकाश में बादल भी थे और चन्द्रमा भी निकला था। कहीं प्रकाश था तो कहीं अन्धकार। कभी चन्द्रमा बादलों के बीच में चमकता था तो कभी उनमें छिप जाता था।

गोमती के किनारे जंगल मानों चन्द्रमा को देखकर अपने घोर अन्धकार को चीरते हुए जैसे निश्वास छोड़ रहे थे।

आज रात्री को बाहर निकलने की मना ही थी। इसलिए रात्री में कोई बाहर न निकला था।

मार्ग सुनसान और उसमें सूनापन छाया हुआ था।

नागरिकों ने अपने-अपने चिराग बुझा दिये थे, दरवाजे बंद कर दिये थे।

रास्ते में कोई पहरेदार तक न था।

आज चोर तक बाहर न निकलते थे, लोग अपना मुर्दा फूंकने के लिये भी बाहर नहीं निकलते थे। और सुबह होने का इन्तजार करते थे।

जो भिखारी रात में सड़क के किनारे पेड़ के नीचे पड़े सोते थे, वे आज गृहस्थों की गौशाला में विश्राम करते थे।

नगर की हर सड़क पर आज कुत्तों और सियारों का राज्य था।

एक—आध बाघ या चीता भी शहर में निकल आया था।

केवल एक व्यक्ति आज घर से बाहर था?

वह नदी के किनारे एक पत्थर पर छुरी रगड़ कर तेज कर रहा था।

छुरी की धार काफी तेज थी, लेकिन जैसे वह छुरी के साथ-साथ अपनी भावनाओं पर भी सान चढ़ा रहा था।

जब बड़ी जोर की बारिस होने लगी तब जयसिंह को कुछ होश आया, वह छुरी को अपनी कमर में खोंसकर उठ खड़ा हुआ। पूजा का समय निकट था, उसे अपनी प्रतिज्ञा का ध्यान आया।

अब क्षण भर की देरी नहीं की जा सकती थी।

मन्दिर हजारों चिरागों से रोशन था।

तेरह देवताओं के बीच में खड़ी काली ने नर रक्त का पान करने के लिये अपनी जीभ बाहर निकाल रखी थी।

मन्दिर के नौकरों को छुट्टी देकर र[illegible] —ओं की ओर [illegible]ार रखी मुंह किये हुए बैठा था, उसके साम

हुई चमक रही थी और जैसे वह देवी की आज्ञा की प्रतीक्षा कर रहा था।

पूजा आधी रात को होती थी।

समय समीप था ?

रघुपति अधीरता से जयसिंह का इन्तजार करने लगा।

जोरों की हवा चलने लगी।

मूसलाधार बारिस होने लगी।

चिराग कांपने लगे।

नंगी तलवार पर विद्युत सी कोंवने लगी।

मन्दिर की दीवार पर चौदह देवताओं के साथ-२ रघुपति की छाया भी हिलने लगी।

मन्दिर में चिमगादड़ घुस आये, और सूखे पत्तों की तरह इधर—उधर उड़ने लगी। उनकी छाया दीवारों पर पड़ने लगी।

कभी सियार के भूखने की आवाज आ जाती थी।

पूजा का समय हो गया था ?

रघुपति अमंगल की आशंका से अधीर होने लगा।

इसी समय तूफान की तरह जयसिंह रात के अन्धेरे से सहसा मन्दिर की रोशनी में दाखिल हुआ !

उसका शरीर एक लम्बी चादर से ढ़का था और भीगा हुआ था !

उसकी आंखों से चिन्गारियां बरस रही थी, श्वास जोरों से चल रही थी।

रघुपति ने उसका हाथ पकड़ कर कान में कहा—

'खून लाये हो ?'

जयसिंह उसका हाथ झिटक कर बोला—

लाया हूँ आप दूर खड़े रहे, मैं खुद देवी पर चढ़ाऊंगा ?

उसके इन शब्दों से जैसे मन्दिर हिल उठा।

जयसिंह काली की मुर्ति के पास खड़ा होकर कहने लगा—

तो यह सच है कि तू अपनी ही सन्तान का खून चाहती है माँ, राज-रक्त के बगैर तेरी प्यास बुझेगी नहीं! जन्म से ही मैं तुम्हें मां कहता आया हूं। मैं राजवंश का हूं, क्षत्रिय हूँ। मेरे प्रपितामह राजा थे। मेरी माता के वंश के लोग भी राज करते थे। मेरा रक्त भी तो राजरक्त ही हैं!

इतना कहते -२ उसके शरीर से चादर गिर पड़ी।

उसने कमर से छूरी निकाली और देखते ही देखते उसे अपने हृदय में धंसा लिया।

वह मूर्ति के पैरों के पास गिर पड़ा।

पत्थर की मूर्ति इससे जरा भी विचलित नहीं हुयी।

रघुपति चिल्ला पड़ा।

उसने जयसिंह को उठाने की कोशिश की, किंतु उसे उठा नहीं सका। वह उसके मृत शरीर पर ही पड़ा रहा। खून निकलकर मन्दिर के सफेद पत्थरों पर खेलने लगा।

सारे चिराग एक एक करके बुझ गये।

घने अन्धकार में उसे किसी की आहटें सुनायी देती रहीं।

❁ ❁ ❁

राजा के आदेश से नक्षत्र राय प्रजा में फैले हुए असन्तोष का पता लगाने के लिये खुद निकला।

उसने सोचा मन्दिर जाने से क्या लाभ।

वह रघुपति के सामने जाने से न जाने क्यों कुछ विचलित हो उठता था और उचित अनुचित का ज्ञान खो बैठता था।

इसलिये उसने निर्णय किया कि रघुपति की निगाह बचाकर चुपके से जयसिंह के कमरे में जाकर सारी बातों का पता लगा

ले ।

वह जयसिंह के कमरे में घुसा ।

अन्दर पहुंचते ही उसने देखा कि जयसिंह का सारा सामान किताबें कपड़े वगैरहा विखरे पड़े हैं । उसके बीच में रघुपति बैठा था ।

रघुपति की आंखें अंगारों की भांति दहक रही थी । वाल विखरे हुए थे ।

जयसिंह का कहीं पता नहीं था ।

नक्षत्र राय को देखते ही रघुपति ने उसका हाथ पकड़ लिया और वलं पूर्वक उसे जमीन पर विठा दिया । नक्षत्र राय के होश उड़ गये ।

रघुपति फुंकारा ।

'रक्त कहां है ।'

नक्षत्र राय का शरीर ढ़ीला पड़ गया ।

मुख से एक शब्द भी न निकला ।

उसका कर्त्तव्य जागरत हो गया ।

अस्फुट स्वर उसके मुख से निकले ।

'प—पुजारी···जी ।'

रघुपति वोला ।

'इस वार मां ने स्वयं तलवार उठा ली है, जव चारों ओर खून वहेगा और तुम्हारे वंश में खून की एक वूंद तक वाकी न रह जाएगी तव देखूंगा तुम्हारा भ्रात स्नेह ।'

'भ्रात स्नेह । हां, हां, हां, पुजारी जी । नक्षत्र राय और अधिक न हंस सका ।

उसका गला रुंध गया ।

रघुपति कहने लगा ।

'मुझे गोविंद माणिक्य का खून नहीं चाहिये ! इस जमी

पर गोविंद माणिक्य के लिये जो प्राणों से भी अधिक प्रिय है, मैं उसी का खून चाहता हूं। इसे देख लो—भली भांति देख लो।'

यह कहकर रघुपति ने दुपट्टा हटा दिया।

उसका शरीर खून से लथ-पथ था।

छाती पर भी जगह-२ खून जमा हुआ था।

नक्षत्र राय सिहर उठा।

उसका वदन कांपने लगा।

रघुपति उसकी कलाई कसकर दवाकर बोला।

कौन है वह, बताओ कौन है वो जो गोविंद माणिक्य को जान से भी प्यारा है? इसके न रहने पर गोविंद माणिक्य के लिये यह संसार श्मशान तुल्य हो जायेगा। सुवह उठते ही वह किसका मुख देखते हैं और किसको लेकर रात में सोने जाते हैं।

वह बुरी तरह से नक्षत्र को घूरने लगा।

नक्षत्र राय ने घवड़ाकर कहा।

नहीं-नहीं। किन्तु फिर भी वह रघुपति की पकड़ से अपने को छुड़ा न सका।

'वताओ वह कौन है।'

'ध्रुव।'

'ध्रुव कौन।'

'वह एक लड़का है।'

हाँ मैं उसे जानता हूं? राजा की कोई सन्तान नहीं, वे सन्तान की तरह ही उसका पालन-पोषण कर रहे हैं। लोग अपनी सन्तान को जितना प्यार करते हैं यह तो मैं नहीं जानता किंतु इतना अच्छी तरह जानता हूं कि अपनी पाली हुई सन्तान को लोग प्राणों से भी ज्यादा चाहते हैं। राजा हमेशा उसको

ध्यान रखते हैं। अपने सिर के बजाए उस बच्चे के सिर पर मुकुट देखकर राजा खुश होते हैं।

'हां वे उसी को चाहते हैं।

'तो फिर उसी को लाना होगा। आज रात मे ही। समझे ना।'

'हां आज रात में ही। नक्षत्र राय ने जल्दी से कहा।

रघुपति उसे घूरकर देखता रहा।

फिर वोला—

यही वालक तो तुम्हारा दुश्मन है जानते हो न ? तुम राज कुल में पैदा हुए हो—फिर न जाने कहां से यह अज्ञात कुल का लड़का तुम्हारे सिर से मुकुट उतारने के लिये आ गया। तुम यह नहीं जानते हो क्या ?

जो राज सिहासन तुम्हारी अपेक्षा करता था उसी पर आज इस लड़के का हक होता जा रहा है। क्या इसे अपनी आंखों से देखकर तुम कुछ समझ नहीं पा रहे हो ?'

नक्षत्र राय के लिये यह सब नयी बातें थी।

उसने पहले भी ऐसा सोचा थ:।

वह गर्जकर वोला•••

'पुजारी जी मैं सब जानता हूं ?'

'तब सोचते क्या हो•••उसे मेरे पास ले आओ। मैं तुम्हारे रास्ते का कांटा दूर कर दूंगा। जाओ। मगर उसे कब लाओगे

आज ही शाम को अन्धेरा होने के बाद।'

रघुपति ने जनेऊ का स्पर्श करके कहा।

अगर तुम उसे नहीं लाओगे तो ब्राह्मण का शाप तुम पर पड़ेगा।

जिस मुंह से उसे लाने की प्रतिज्ञा कर रहे हो याद रखो अगर प्रतिज्ञा पूरी नहीं की तो तीन दिन के भीतर ही तुम्हारे

इस चेहरे को गिद्ध नोंच खायेंगे।

नक्षत्र राय वहां से चल दिया।

जब कमरे से बाहर निकल कर बाहर प्रकाश और जन कोलाहल के बीच आया तो जैसे उसे नया जीवन प्राप्त हुआ।

शाम को नक्षत्र राय को देखते ही ध्रुव, चाचा। चाचा कहकर दौड़ता हुआ आया और उससे लिपट गया। अपने छोटे-२ हाथों से गला पकड़कर उसने अपना गाल उसके गाल पर रख दिया। और बहुत ही प्यार से बोला।

'चाचा।'

नक्षत्र राय बोला।

'छिः, ऐसी बात न कहो। मैं तुम्हारा चाचा नहीं हूँ ?'

अब तक ध्रुव उसको चाचा ही कहता आ रहा था। किन्तु जब उसने मना किया तो वह हक्का-बक्का रह गया।

कुछ क्षणों तक वह चुपचाप बैठा रहा।

फिर नक्षत्र राय से बोला।

'तो कौन हो तुम।'

'मैं तुम्हारा चाचा नहीं हूं।'

ध्रुव जोर से हंस पड़ा।

ऐसी बात उसने पहले न सुनी थी।

वह हंसकर बोला।

'तुम चाचा हो।'

नक्षत्र उसे जितना भी मना करता ध्रुव उसे उतना ही ज्यादा चाचा कहता।'

आखिर में नक्षत्र राय बोला।

'ध्रुव दीदी को देखने चलोगे।'

वह एकदम खड़ा हो गया।

और पूछने लगा।

'कहां है दीदी।'

'मां के पास।'

'माँ, कहां है।'

'तुमको मैं वहीं ले चलूंगा।

'ध्रुव ने ताली बजाते हुए कहा।'

'कब चलोगे—चाचा।'

'इसी समय।'

ध्रुव खुशी से उछल पड़ा।

वह नक्षत्र राय के पैरों से लिपट गया।

नक्षत्र राय ने उसे गोद में उठा लिया।

और फिर उसे कपड़े से ढककर भूर्गभ के रास्ते से बाहर ले आया।

आज रात्रि में भी बाहर निकलने की मनाही थी।

रास्ते में उन्हें कोई नहीं मिला।

आकाश में पूरा चांद उगा हुआ था।

मन्दिर में जाकर नक्षत्र राय ध्रुव को रघुपति के हाथों में देने लगा।

रघुपति को देखकर ध्रुव जोरों से नक्षत्र राय से लिपट गया।

वह किसी भी तरह उसे छोड़ता नहीं था।

रघुपति ने जबरदस्ती उसे छीन लिया।

ध्रुव चाचा कहकर रोने लगा।

नक्षत्र राय की आंखों में भी आंसू आ गए। उसे रघुपति के

सामने अपनी कमजोरी दिखाने में शर्म महसूस होने लगी।

ध्रुव फिर दीदी को पुकार कर रोने लगा।

रघुपति ने उसे डांट दिया।

डर के मारे वह चुप हो गया।

वह सिसकने लगा।

चौदह देवताओं की मूर्तियां खामोश खड़ी देखती रही।

गोविन्द माणिक्य आधी रात को किसी के रोने की आवाज सुनकर जाग पड़े।

उन्होंने सुना कोई खिड़की के नीचे खड़ा होकर कातर स्वर में पुकार रहा है।'

'महाराज। महाराज।

राजा फौरन उठकर बाहर गए।

चांद की चाँदनी में उन्होंने देखा कि ध्रुव के चाचा द्वार पर खड़े हैं।

उन्होंने पूछा।

'क्या बात है।'

'महाराज मेरा ध्रुव कहां है।'

'क्यों क्या वह तुम्हारे बिस्तर पर नहीं है।

'नहीं, सायकाल हो जाने पर जब मैंने पूछ ताछ की तो युवराज नक्षत्र राय के नौकर ने बताया कि ध्रुव युवराज के महल में है। यह सुनकर मैं निश्चिंत हो गया। जब आधी रात हो गयी और ध्रुव नहीं आया तो मुझे शक होने लगा। पता लगाने पर मालूम हुआ कि वह युवराज के महल में नहीं है।

मैंने महाराज से निवेदन करने के लिए भेंट करने की बड़ी कोशिश की। किन्तु पहरेदार ने मेरी बात न मानी। इसलिए मुझे महाराज की खिड़की के पास से आवाज देनी पड़ी। मैंने आपकी नींद में खलल डाली—कृपया इस जुर्म को माफ करें।

आखिर में नक्षत्र राय वोला।

'ध्रुव दीदी को देखने चलोगे।'

वह एकदम खड़ा हो गया।

और पूछने लगा।

'कहां है दीदी।'

'मां के पास।'

'माँ, कहां है।'

'तुमको मैं वहीं ले चलूंगा।

'ध्रुव ने ताली वजाते हुए कहा।'

'कव चलोगे—चाचा।'

'इसी समय।'

ध्रुव खूशी से उछल पड़ा।

वह नक्षत्र राय के पैरों से लिपट गया।

नक्षत्र राय ने उसे गोद में उठा लिया।

और फिर उसे कपड़े से ढककर भूर्गभ के रास्ते से वाहर ले आया।

आज रात्रि में भी वाहर निकलने की मनाही थी।

रास्ते में उन्हें कोई नहीं मिला।

आकाश में पूरा चाँद उगा हुआ था।

मन्दिर में जाकर नक्षत्र राय ध्रुव को रघुपति के हाथों में देने लगा।

रघुपति को देखकर ध्रुव जोरों से नक्षत्र राय से लिपट गया।

वह किसी भी तरह उसे छोड़ता नहीं था।

रघुपति ने जबरदस्ती उसे छीन लिया।

ध्रुव चाचा कहकर रोने लगा।

नक्षत्र राय की आंखों में भी आंसू आ गए। उसे रघुपति के

सामने अपनी कमजोरी दिखाने में शर्म महसूस होने लगी।

ध्रुव फिर दीदी को पुकार कर रोने लगा।

रघुपति ने उसे डांट दिया।

डर के मारे वह चुप हो गया।

वह सिसकने लगा।

चौदह देवताओं की मूर्तियां खामोश खड़ी देखती रही।

गोविन्द माणिक्य आधी रात को किसी के रोने की आवाज सुनकर जाग पड़े।

उन्होंने सुना कोई खिड़की के नीचे खड़ा होकर कातर स्वर में पुकार रहा है।'

'महाराज। महाराज।

राजा फौरन उठकर बाहर गए।

चांद की चाँदनी में उन्होंने देखा कि ध्रुव के चाचा द्वार पर खड़े हैं।

उन्होंने पूछा।

'क्या बात है।'

'महाराज मेरा ध्रुव कहां है।'

'क्यों क्या वह तुम्हारे बिस्तर पर नहीं है।

'नहीं, सायकाल हो जाने पर जब मैंने पूछ ताछ की तो युवराज नक्षत्र राय के नौकर ने बताया कि ध्रुव युवराज के महल में है। यह सुनकर मैं निश्चित हो गया। जब आधी रात हो गयी और ध्रुव नहीं आया तो मुझे शक होने लगा। पता लगाने पर मालूम हुआ कि वह युवराज के महल में नहीं है।

मैंने महाराज से निवेदन करने के लिए भेंट करने की बड़ी कोशिश की। किन्तु पहरेदार ने मेरी बात न मानी, इसलिए मुझे महाराज की खिड़की के पास से आवाज देनी पड़ी। मैंने आपकी नींद में खलल डाली—कृपया इस जुर्म को मा[illegible]ें।

महाराज के नेत्रों में बिजली सी कौंधी।

उन्होंने चार पहरेदारों को बुलाया और कहा ...

अच्छी तरह हथियार बन्द होकर मेरे पीछे आओ।

एक पहरेदार ने कहा।

महाराज ! आज की रात तो बाहर निकलने की मनाही है।

'मैं हुक्म दे रहा हूँ।'

केदारेश्वर भी जाने को तैयार हुआ।

राजा ने उसे मना कर दिया।

इस चांदनी रात में सुनसान मार्ग से होकर राजा मन्दिर की ओर चलें।

मन्दिर के खुले हुए दरवाजे से दिखायी दिया—कि एक तलवार सामने रखकर रघुपति और नक्षत्र राय शराब पी रहे थे।

वहाँ प्रकाश ज्यादा न था।

एक चिराग जल रहा था।

ध्रुव काली की मूर्ति के पास सोया हुआ था।

उसके गालों पर आंसू सूख गए थे।

दोनों होंठ खुले हुए थे।

ऐसा लगता था जैसे वह मूर्ति के पास नहीं बल्कि अपनी दीदी की गोद में सोया हुआ है।

शराब पीने के कारण नक्षत्र राय को कुछ होश नहीं था।

किन्तु रघुपति चुपचाप पूजा के मूहर्त के समय का इन्तजार कर रहा था।

उसने नक्षत्र राय की बकवास पर कोई ध्यान नहीं दिया।

नक्षत्र कह रहा था—

'पुजारी जी तुम्हारे मन में डर पैदा हो रहा है, आप डरते

हैं और मैं भी डर रहा हूँ। लेकिन डर की कोई बात नहीं। डर किसका ? मैं किसी से नहीं डरता, न शाहशुजा से न शाहजहां से। पुजारी जी आपने कहा क्यों नहीं ? मैं राजा को पकड़ लाता। इस छोटे से बच्चे में भला कितना खून निकलेगा।'

अचानक दिवार पर एक छाया हिलती दिखाई दी।

नक्षत्र राय ने घूमकर देखा।

सामने राजा खड़े थे।

उसका नशा हिरन हो गया।

राजा ने दौड़कर ध्रुव को उठा लिया।

और पहरेदारों से कहा—

'इन दोनों को गिफ्तार कर लो।'

पहरेदारों ने नक्षत्र राय और रघुपति को पकड़ लिया।

ध्रुव को सीने से लगाये हुए महाराज चन्द्रमा के शुभ प्रकाश में उस निर्जन मार्ग से होते हुए महल में लोट आये।

दूसरे रोज अपराधियों के वारे में सोचा गया।

न्यायालय में लोग खचाखच भरे हुए थे।

न्यायाधीश के आसन पर महाराज विराजमान थे।

सामने दोनों अभियुक्त खड़े थे।

रघुपति का अपराध प्रमानित करके राजा ने कहा...

'तुमको कुछ कहना है।'

वह वोला—

'मुझ पर विचार करने का अधिकार किसी दूसरे को नहीं है।'

'तो तुम्हारा विचार कौन करेगा ।'

मैं ब्राह्मण हूँ, देव सेवक हूं । इसलिये देवता ही मेरे बारे में विचार कर सकते हैं ।

पाप का दण्ड और पुण्य का पुरुस्कार देने के लिये इस संसार में देवताओं के सैकड़ों अनुचर है । मैं भी उनमें से एक हूँ, किन्तु इस पर मैं तुमसे बहस नहीं करना चाहता । मैं पूछता हूँ, कल शाम बलि चढ़ाने की इच्छा से तुमने एक बालक का अपहरण किया था ।

'हां !'

'तो तुम अपराध स्वीकार करते हो ।

अपराध कैसा अपराध । मैं तो माँ की आज्ञाओं का पालन कर रहा था । किन्तु उसमें विघ्न डाला गया, अपराध तो तुमने किया है । मैं तुम्हें माता के सामने अपराधी ठहराता हूं, वे ही तुम्हारा विचार करेंगी ।

राजा ने उसकी बात का कोई उत्तर न देकर कहा—

मेरे राज्य का कि जो आदमी देवता के नाम पर बलि ढ़ायेगा या बलि चढ़ाने के लिए तत्पर होगा, उसे देश निकाला दे दिया जायेगा । यही दण्ड मैं तुमको भी दे रहा हूँ । तुम आठ साल के लिये देश से निकाल दिये गये । सिपाही तुम्हें मेरे राज्य से बाहर छोड़ आयेंगे ।

सिपाही रघुपति को ले जाने लगे !

'ठहरो ।' वह गुर्राया, फिर राजा से बोला—

अभी तुम पर विचार होना बाकी है ? अब मैं तुम पर विचार करूंगा । सुनो चौदह देवताओं की पूजा की ही रात में जो बाहर निकलता है वह पुजारी के दण्ड का भागी होगा ! यह मन्दिर का पुराना नियम है इसके अनुसार तुम दण्ड के भागी हुये ।

मैं तुम्हारा दण्ड स्वीकार करने के लिये तैयार हूँ।

सभासद बोले...

इस अपराध के लिये केवल अर्थ दण्ड ही दिया जा सकता है।

रघुपति बोला...

मैं तुम पर दो लाख रुपये का दण्ड लगाता हूं, अभी देना होगा।

राजा ने कहा...

'ठीक है।'

उन्होंने कोषाध्यक्ष को बुलाकर दो लाख रुपये देने की आज्ञा दे दी। सिपाही रघुपति को लेकर चले गए।

'बोलो, अब तुम्हारे साथ क्या किया जाय—अपना अपराध तुम्हें स्वीकार है, या नहीं, राजा ने नक्षत्र राय से कहा।'

महाराज मैं अपराधी हूं। मुझे क्षमा कीजिये, वह राजा के पाँव में लौट गया।

'नक्षत्र राय, उठो ! सुनों मैं तुम्हें क्षमा करने वाला कौन हूं, मैं तो अपने शासन में खुद बन्धा हूं ? जिस प्रकार न्यायाधीश बंधा है। एक ही अपराध के लिए एक व्यक्ति को दण्ड दूं और दूसरे को क्षमा करूं, यह कैसे हो सकता है ?'

सभासद कहने लगे—

'महाराज नक्षत्र राय आपके भाई हैं। आप अपने भाई को क्षमा कर दीजिए।'

आप लोग खामोश रहें, इस जगह न तो किसी का भाई हूँ, न बन्धु है।

वातावरण में निस्तब्धता छा गई।

महाराज गम्भीरता से कहने लगे—

तुम सब लोगों ने सुना होगा कि मेरे राज्य न

कि जो आदमी देवता के नाम पर वलि चढ़ायेगा या चढ़ाने को तत्पर होगा उसको "देश-निकाला" दण्ड दिया जायेगा। कल शाम को नक्षत्र राय ने रघुपति के साथ षड़यन्त्र करके एक वालक का अपहरण किया और उसे वलि चढ़ाने की तैयारी की यह अपराध प्रमाणित हो चुका है, इसलिये मैं इसे आठ साल के लिए निर्वासित करता हूं।

जब सिपाही नक्षत्र राय को ले जाने लगे तो राजा ने सिंहासन से उतर कर उसे गले लगा लिया और भरे हुए कंठ से बोले—

'भाई, यह दण्ड तुम्हें ही नहीं मिला···मुझे भी मिला है। न जाने पिछले जन्म में कौन सा पाप किया था। जब तक तुम यहां से दूर रहो, कुल देवता तुम्हारे साथ रहें और तुम्हारा कल्याण करें!'

जरा देर में यह समाचार चारों ओर फैल गया।

अन्तः पुर में रोना-पीटना मच गया।

राजा एकांत में द्वार बन्द करके बैठ गये और हाथ जोड़कर कहने लगे।

'हे, भगवान अगर मैं कभी अपराध करूं तो मुझे क्षमा न कीजिये। मुझे भी पाप का दण्ड अवश्य मिले, प्रभु,! पाप करके दण्ड सहा जा सकता है। लेकिन क्षमा प्रप्ति का भार असह्य हो जाता है।'

राजा के मन में अब नक्षत्र राय के प्रति दूने वेग से प्रेम जागृत हो उठा।

उनकी आंखों में आंसू बहने लगे।

●●●

रघुपति से सिपाहियों ने प्रश्न किया—
पुजारी किस ओर चलेंगे।

पश्चिम की ओर।

नौ दिन तक पश्चिम की यात्रा करने के बाद वे लोग ढ़ाका नगर के पास पहुंचे।

सिपाही उन्हें वहीं छोड़कर राजधानी वापस लौट आये।

रघुपति मन ही मन कहने लगा। कलियुग में ब्रह्मण के शाप का कोई असर नहीं होता। देखा जाए तो ब्राह्मण की अकल ही अब कितनी रही और गोविन्द माणिक्य क्या है।

त्रिपुरा में अपने मन्दिर में रहते वक्त मुगल राज्य के समाचार उन्हे नहीं मिल पाते थे। इसलिए रघुपति ढ़ाका में मुगलों के रीति रिवाज और शासन—व्यवस्था देखने को उतावले हो उठे।

उस वक्त मुगल साम्राज्य शाहजहां का राज्य काल था।

उसका तीसरा शहजादा औरंगजेब दक्षिण में बीजा पुर पर आक्रमण करने के नियुक्त था।

दूसरा लड़का शुजा बंगाल का राजा था। राजमहल नामक स्थान उसकी राज्यधानी थी।

सबसे बड़ा लड़का दिल्ली में ही रहता था।

सबसे छोटा लड़का मुराद गुजरात पर शासन करता था।

सम्राट रोगा[illegible] हो गया था। इसलिए राज्य का भार दारा के ऊपर ही आ पड़ा था।

रघुपति कुछ दिन तक ढ़ाका में रहकर उर्दू सीखता

और फिर राजमहल की ओर चल पड़ा।

जब वह राजमहल पहुंचा तब तक पूरे देश में अराजकता फैल चुकी थी।

अफवाह उड़ी कि शाहजहां मृत्यु-शैया पर पड़ा है। यह खबर पाते ही शुजा अपनी सेना लेकर दिल्ली की ओर बढ़ चला।

सम्राट के चारों बेटे एक ही झपट्टे में राज मुकट को अपने अधिकार में करने के लिए जल्द बाज हो रहे थे।

रघुपति उसी समय अराजकता पूर्ण राज महल को छोड़कर शुजा के साथ जाने को तैयार हुआ। उसने अपने साथियों और सेवकों को विदा कर दिया।

उसके पास दो लाख रुपये थे, उनको उसने राजधानी के ही पास एक सूनसान जगह पर गाड़ दिए। उसने वहां एक चिन्ह बना दिया।

और थोड़ा सा रूपया साथ लेकर चल दिया।

एक दिन रघुपति एक घर में सोया !

रात जैसे किसी तरह कटती ही नहीं थी।

इसी वक्त धीरे-२ दरवाजा खुला।

शरद कालिन-चांदनी के साथ कई-कई आवाजें घर में घुस आई।

रघुपति चौंक कर उठ बैठा।

उसी क्षण कोई औरत जोर से चीखी।

एक आदमी आगे आकर बोला—

'कौन है, रे !'

रघुपति बोला—

मैं एक ब्राह्मण, राहगीर हूँ, लेकिन तुम कौन हो !

'यह हम लोगों का मकान है। हम लोग मकान छोड़कर भाग गये थे। जब हमने सुना मुगल सेना चली गई है तो हम वापस आ गए।'

रघुपति ने पूछा—

तुम्हें मालूम है, मुगल किस तरफ गए हैं ?

विजय गढ़ की ओर ! इस समय तक वह विजय गढ़ के जंगलों में दाखिल हो चुकी होगी।

रघुपति उसी वक्त बाहर निकल आया।

● ●

विजय गढ़ पर्वत पर वसा था।

विजय गढ़ का जंगल गढ़ के आस—पास खत्म हो गया था।

रघुपति के बाहर आते ही, सैनिक चौंक्कने हो गये।

तुरही बज उठी।

जैसे दुर्ग सहसा सिंहनाद करके अपने पाँव और नख खोल-कर तथा भौहें टेढ़ी करके खड़ा हो गया हो।

रघुपति जनेऊ दिखाकर, हाथ ऊपर उठाकर संकेत करने लगा !

सैनिक सर्तक रहे।

जब रघुपति दुर्ग के समीप पहुंच गया तो सैनिकों ने पूछा···

'कौन हो तुम।'

रघुपति ने उत्तर दिया···

मैं एक ब्राह्मण हूँ ?

दुर्ग के स्वामी विक्रम सिंह परम धर्मनिष्ठ व्यक्ति थे।

वे सदा देवदास ब्राह्मण और अतिथियों की सेवा में लगे रहते थे।

जनेऊ के रहते हुए दुर्ग में दाखिल होने के लिए किसी अन्य प्रकार के परिचय की आवश्यकता नहीं होती थी। किन्तु यह युध्द का समय था। सैनिक सतंक हो उठे थे।

रघुपति गिड़गिड़ा रहा था···

तुम लोगों के आश्रय न देने पर मुसलमान मुझे जान से मार डालेंगे।' रघुपति ने बात बनाते हुए कहा।

ज्यों ही यह बात विक्रम सिंह के कानों में पड़ी, उन्होंने ब्राहमण को दुर्ग में रहने की आज्ञा दे दी।' दीवार के ऊपर से एक सीढ़ी नीचे को लटका दी गई और रघुपति ने दुर्ग में प्रवेश किया।

दुर्ग के भीतर सभी युद्ध की प्रतिक्षा में व्यस्त थे।

वृद्ध चाचा साहब ने ब्राह्मण के अतिथी सत्कार का भार अपने ऊपर ले लिया।

उसका वास्तविक नाम था 'खड़गसिंह' किन्तु कोई तो उसे चाचा साहब कहता और कोई सूबेदार साहब।

चाचा साहब ने कहा—

'वाह ! वाह ! ये तो ब्राह्मण ही तो हैं।'

उन्होंने रघुपति को जोरदार प्रणाम किया।'

रघुपति की आकृति एक तेजोमय् दीप शिखा की तरह थी।

उसको देख के लोग पतिन्गों की तरह मुग्ध हो जाते थे।

चाचा साहब ने पूछा—

'महाराज, कहां से आ रहे हैं।

'त्रिपुरा के राज्य महल से।'

विजयगढ़ के बाहर स्थिति भारत वर्ष के भूगोल अथवा इतिहास के बारे में चाचा साहब की जानकारी नहीं के बराबर

थी ।

विजयगढ़ के अतिरिक्त भारतवर्ष में जानने योग्य दूसरा कुछ भी नहीं है, इसमें उनका विश्वास न था ।

एकदम वह कल्पना के वल पर वोले—

'त्रिपुरा का राजा तो वड़ा राजा है ।'

रघुपति ने उसका समर्थन किया :

'तो वहां महाराज क्या करते हैं ।' चाचा साहव ने पूछा ।

'मैं त्रिपुरा का राज—पुरोहित हुं ।'

···चाचा साहव ने नेत्र वन्द करके सिर हिलाया और कहा—

'अहा ।'

रघुपति के प्रति उनकी भक्ती और ज्यादा वढ़ गई ।

वे फिर वोले—

'आपके आने का तात्पर्य, महाराज ।'

'तीर्थ—दर्शन ।'

अचानक एक धमाका हुआ ।

शत्रुओं ने दुर्ग पर हमला कर दिया ।

चाचा साहव हंसे !

फिर वोले···

'वह कुछ भी नहीं हैं, पत्थर फेंके जा रहे हैं ।

विजयगढ़ के ऊपर चाचा साहव का विश्वास जितना पक्का था, दुर्ग के पत्थर भी उतने ही पक्के थे ।

विदेशी पथिक के दुर्ग में आते ही चाचा साहव उनको लेकर वैठ जाते तथा विजयगढ़ की महिमा उनके मन में [illegible] दो ।

त्रिपुरा के [illegible] से रघुपति आया

अतिथि उन्हें अन्यत्र नहीं मिलेगा, इसलिए चाचा साहब अत्यन्त उल्लास में थे। वे अतिथि के साथ विजयगढ़ के पुरातत्व के बारे में बहस करने लगे।

● ★ ●

सन्ध्या समय खबर मिली कि दुश्मन दुर्ग को किसी भी तरह का नुकसान न पहुँचा सका।

उन्होंने तोपें दागी थी किन्तु तोप के गोले दुर्ग तक पहुंच ही न पाये।

चाचा साहब ने हंसकर रघुपति की तरफ देखा।

उनका मतलब था कि दुर्ग के प्रति भगवान शंकर का जो अमोघ वर है उसका इससे बढ़कर दूसरा तो हो ही क्या सकता है :

मालूम होता है नन्दी स्वयं आकर तोपों के गोलों को उठा कर ले गये और अब कैलाश पर गणपति तथा कार्तिकेय उनसे गेंद की तरह खेलेंगे।

●●●

शाहशुजा को किसी भी प्रकार अपने वश में करना ही रघुपति का उद्देश्य था।

जब उन्होंने सुना कि शुजा दुर्ग पर हमला करने लगा है तो उसने निर्णय किया कि दोस्त भाव से दुर्ग में घुसकर किसी-न किसी उपाय से दुर्ग पर हमला करने में शुजा की सहायता पहुंचाई जाय।'

किन्तु पंडित तो युद्ध इत्यादी के बारे में जानते नहीं, अतः किस प्रकार शुजा की सहायता की जाये, इस बारे में सोच ही

न सका।

दूसरे दिन लड़ाई फिर चालू हो गई।

दुश्मनों ने बारूद के प्रयोग से दुर्ग के प्राचीर का कुछ हिस्सा उड़ा दिया।

किन्तु बार-बार गोलियों की बौछार करने पर भी वे दुर्ग के भीतर दाखिल न हो सके।

टूटा भाग फिर जोड़ दिया गया।

तोप के गोले दुर्ग के बीच आकर गिरने लगे। दुर्ग के सैनिक दो——चार करके खतम या घायल होकर गिरने लगे।

'महाराज डर की कोई बात नहीं यह तो खेल हो रहा है।'

इतना कहकर चाचा साहब रघुपति को लेकर दुर्ग को चारों तरफ से दिखाते हुये घूमने लगे।

कहां अस्त्रागार है!

कहां भण्डार है।'

कहां घायलों का अस्पताल हैं!

कहां बन्दी ग्रह है और कहां दरबार है, सब कुछ एक-एक करके उन्होंने दिखाया।

रघुपति ने कहा—

'विशाल कारखाना है। त्रिपुरा का किला इसकी बराबरी नहीं कर सकता। किन्तु साहब छिपकर भाग जाने के लिये त्रिपुरा के दुर्ग में एक आश्चर्यजनक सुरंग रास्ता है। पर यहां पर वैसी कोई चीज नहीं देख रहा हूं।

चाचा साहब कुछ कहने ही जा रहे थे कि अचानक अपने आपको रोककर बोले…

'नहीं, दुर्ग में ऐसा कुछ नहीं है।'

रघुपति ने आश्चर्य से कहा—

'इतने बड़े दुर्ग में एक सुरंग तक नहीं। भला यह कैसे हो सकता है।'

चाचा साहब ने एक क्षण को चुप रह कर कहा—

'यहां हर चीज मौजूद है, किन्तु हम लोग उसके बारे में जानते नहीं।'

'तब तो न रहने के समान ही है, आप ही भला जब नहीं जानते तो दूसरा कौन जानता होगा !'

चाचा साहब चुप रहे।

सहसा फिर 'राम-राम' कहकर उंगली से चुटकी बजाई और जम्हाई लेकर वह अपनी मूंछ दाढ़ी पर हाथ फेरकर हट्ात बोल उठे···

'महाराज, आप जैसा पूजा-पाठ में मग्न रहने वाले व्यक्ति से कहने में हमें कोई ऐतराज नहीं। दुर्ग में घुसने और बाहर निकलने के लिए दो गुप्त रास्ते हैं। किन्तु किसी भी बाहरी व्यक्ति को उंहें दिखाने की इजाजत नहीं हैं।

रघुपति ने संदेह युक्त स्वर में कहा···

'हां, होंगे।'

चाचा साहब ने समझ लिया कि अपने ही दोष के कारण एक वार नहीं।' और फिर हां' से लोगों में स्वभावतः ही संदेह उत्पन्न हो जाता है।

एक अन्य राज्य में रहने वाले व्यक्ति की दृष्टी में त्रिपुरा के किले के समकक्ष विजयगढ़ किभी भी अंश में कम हो जाये यह बात चाचा साहब के लिए असह्य थी।

उन्होंने कहा···

'महाराज, मैं समझता हूँ आप त्रिपुरा से काफी दूर हैं तथा

आप पंडित है, देवताओं की पूजा करना आपका एक मात्र कार्य हैं। अतः आपके द्वारा किसो बात के फूटने का डर नहीं है।'

रघूपति बोला...

मुझे इन सब से मतलब ही क्या है, साहब। शक है तो सारी बातें रहने दीजिए न। मैं पंडत हूं, भला मुझे दुर्ग की बातों से क्या मतलब।'

चाचा साहब ने कहा—

'अरे, राम-राम ! फिर आप पर सन्देह कैसा ? चलिए एक बार दिखा लाऊं ?'

उधर सहसा शूजा की सेना में भगदड़ मच गइ।

वन के मध्य में शुजा का शिविर था।

सुलेमान तथा जयसिह की सेनाओं ने सहसा ही आकर उस को बन्दी बना लिया तथा छिपकर दुर्ग पर हमला करने वालों पर टूट पड़े।

शुजा की सेना लड़ाई से विमुख होकर अपनी बीस तोपों को वहीं छोड़कर भाग खड़ी हुयी।

दुर्ग के अन्दर चहल पहल हो गयी।

विक्रमसिह के पास जैसे ही सुलेमान का दूत पहुंचा उन्होंने तुरन्त दुर्ग का फाटक खुलवा दिया।

और वे स्वयं आगे आकर सुलेमान व जयसिह को सम्मान के साथ अन्दर ले आये।

दिल्ली पति की सेना तथा हाथी—घोड़ों से दुर्ग भर गया।

झण्डा फहराने लगा।

शंख तथा रणभेरिया बजने लगी।

और चाचा साहब की खुशी के कारण, उन के दांत मोतियों के समान चमकने लगे।

●●●

चाचा साहव के लिए यह कितनी खुशी का दिन था।

आज दिल्लीपति के राजपूत सैनिक विजयगढ़ के अतिथि हुए थे और महाप्रताप शाली वन्दी हुआ था।

निश्वास छोड़कर चाचा साहव ने राजपूत सुचेतसिंह से कहा—

'सोचकर देखो तुम्हारे हाथों में हथकड़ियां पहनाने के लिए कितना आयोजन करना पड़ा है। कलियुग आ जाने के कारण समय का एकदम अभाव हो गया है। इस क्षण चाहें राजा का लड़का हो या वादशाह का, इस सन्सार में खोजने पर किसी के भी दो हाथ से अधिक कुछ नहीं मिल सकता—वांधने में सुख नहीं है।'

सुचेत हंस पड़ा।

'ये दो हथकड़ियां ही काफी हैं। उसने कहा।

चाचा साहव कुछ सोचकर वोले—

यह तो है ही। उस वक्त काम वहुत रहता था। आजकल काम इतना कम है कि इन दोनों हाथों के कार्य का कोई विवरण नहीं दिया जा सकता। और हाथ होते तो वे भी वस मूंछों को मरोड़ने के काम आते।'

फिर वे सुचेतसिंह को लेकर दिन भर दुर्ग का निरीक्षण करते रहे।

सुचेतसिंह जहाँ किसी प्रकार का आश्चर्य प्रदर्शित न करता वहां चाचा साहव स्वयं—वाह! वाह करके अपना उत्साह उस वीर राचपूत के हृदय में संचारित करने का प्रयत्न करते। विशेप

कर दुर्ग की चहार दिवारी की वनावट के वारे में वताते समय उनको अधिक मेहनत करनी पड़ी।

दुर्ग की चाहर दीवारी जितनी अविचंलित थी सुचेतसिंह भी उतना ही पक्का था।

उसके चेहरे पर किसी प्रकार का भाव लक्षित नहीं होता था।

चाचा साहव घुमा-फिराकर उनको कभी दुर्ग के वांये कभी दांये कभी ऊपर, और कभी नीचे ले आते थे।

वे वार वार कहते थे।

कितना सुन्दर है।'

सुचेतसिन्ह पर इसका कोई असर नहीं हुआ।

आखिर में सांयकाल थक कर सुचेतसिंह वोला—

मैंने भरतपुर का किला देखा दूसरा कोई भी किला मेरी निगाहों में नहीं वैठता।

चाचा साहव ने किलस कर कहा।

'हाँ यह वात तो तुम कह ही सकते हो किन्तु त्रिपुरा का किला भी कुछ कम नहीं।

'त्रिपुरा भी नगर है।'

'वहुत वड़ा नगर है, ज्यादा वातें करने से क्या फायदा, [illegible] के पुरोहित हमारे दुर्ग के अतिथि हैं, तुम उन्हीं की जुवानी [illegible] कुछ सुन लो।'

किन्तु वह पन्डित कहीं खोजने से न मिला।

चाचा साहव सुन्न रह गये।

उनके प्राण सूखने लगे।

मन ही मन वे कहने लगे।

इन देहाती राजपूतों ने तो वह पन्डित कहीं [illegible]

सुचेतसिंह के सामने वे रघुपति की [illegible]

लगे ।

सुचेतसिंह चुपचाप सुनता रहा ।

...... ।'

चाचा साहव से छुटकारा पाने के लिए सुचेत सिंह को ओर अधिक प्रयास न करना पड़ा ।

कल प्रातःकाल वन्दी के साथ सम्राट की सेना की यात्रा का दिन तय हो गया था ।

यात्रा की तैयारी के लिए सैनिक नियुक्त हो गये थे ।

कारागार से शाहशुजा बहुत असन्तुष्ट होकर मन ही मन कह रहा था ।

'ये लोग कितने वे अदव है, शिविर में से मेरा हुक्का तक लाने का ख्याल इन्हें नहीं हुआ ।

विजय गढ़ पहाड़ की तलहटी में एक बहुत वड़ा गडढ़ा था उस गड्ढ़े के किनारे एक स्थान पर विद्युत गिरने के कारण जले हुए एक पीपल के वृक्ष का एक वड़ा सा तना था। रघुपति ने अपने को वहीं घोर रात्री में छिपा लिया ।

गुप्त रीति से दुर्ग में प्रवेश करने के लिए जो सुरंग का रास्ता था उसका मुख्य द्वार इसी गड्ढ़े में था । ऊपर से वह किसी प्रकार नहीं वताया जा सकता था । इसलिए जो लोग दुर्ग के अन्दर जाते वे इस रास्ते द्वारा वाहर नही आ सकते थे ।

कारागार के पलंग पर शुजा सोया हुआ पड़ा था ।

उस पलंग को छोड़कर कमरे में दूसरा कोई बिस्तर नहीं था ।

वहां एक चिराग जल रहा था ।

सहसा कमरे में एक छेद हो गया ।

धीरे-धीरे सिर उठाकर रघुपति नीचे से उपर आ गया ।

सारा शरीर उसका भीगा हुआ था।

भीगे वस्त्रों से उसके पानी टपक रहा था।

उसने धीरे से शुजा को स्पर्श किया।

शुजा चौकंकर उठ बैठा।

बाद में आश्चर्य से बोला।

क्या बात है, क्या हंगामा है, मुझे अब रात को भी सोने नही दोगे। तुम लोगों के बर्ताव पर मुझे ताज्जुब हो रहा है।

रघुपति फुसफुसाया।

'शाहजादा उठने की कृपा करें मैं एक पन्डित हूँ! भविष्य में भी मुझे याद कर देखिएगा। —

——।'

दूसरे दिन प्रातःकाल सम्राट की सेना यात्रा के लिए तैयार हुयी।

शुजा को नींद से जगाने के लिए राजा जयसिंह स्वयं बंदीगृह में गये।

उन्होंने देखा कि शूजा बिस्तर पर न था, केवल उसके कपड़े वहां पड़े थे। कमरे के फर्श में सुरंग का छेद था। उस पर ढक्कन का पत्थर खुला था।

बन्द्रीं के भाग जाने का समाचार जरा-सी देर में सारे दुर्ग में फैल गया।

खोजने के लिए चारों ओर दूत छोड़े गये।

राजा विक्रम सिंह का सिर नीचा हो गया।

बन्दी किस प्रकार भागा – इस पर विचार करने के लिए सभा बैठी।

चाचा साहब की गर्व पूर्ण खुशी, लुप्त हो गई थी। वह पागलों की तरह रघुपति को खोजने लगे। पर वह कहीं मिला नहीं।

साफा उतारे वे सिर पे हाथ रखे बैठे थे ।

सुचेतसिंह उनके पास आकर बैठ गया ।

'चाचा ! कितने आश्चर्य की बात है, क्या यह सब भूत-प्रेतों का काम है ।'

'नहीं !' चाचा साहब ने मरे जी से कहा—'यह काम भूतों का नही है, यह एक बूढ़े पाखंड़ी आदमी का काम है ।'

अगर आप जानते हैं तो उसे गिरफ्तार क्यों नहीं करते ।'

'उनमें से एक तो भाग गया है और दूसरे को गिरफ्तार करके राज्य-सभा में लिये जा रहा हूँ ।'

सभा में मंतरियों का ब्यान लिया जा रहा था ।

चाचा साहब ने वहाँ सिर नीचा किये हुए प्रवेश किया ।

विक्रमसिंह के पैरों में तलवार रखकर कहा—

'मुझे गिरफ्तार करने का हुक्म दीजिए, मैं अपराधी हूँ ।'

राजा ने आश्चर्य से कहा—

'चाचा साहब, आखिर चक्कर क्या है ।'

'वहीं पडंत ! वह सब उस बंगाली पडंत का काम है ।'

राजा ने प्रश्न किया—

'क्या किया है तुमने ।'

'महाराज, मैंने विजयगढ़ का भूगर्भ, सुरंग मार्ग बता कर विश्वासघात का काम किया है । मैंने बहुत बड़े बेवकूफ की तरह विश्वास करके उस बंगाली पंडत को गुप्त मार्ग बता कर गलती की है ।'

'खडगसिंह'

चाचा साहब सकपका गये ।

विक्रमसिंह कह रहे थे—

खडगसिंह ! इतने दिनों के बाद क्या तुम फिर बच्चे हो गये हो।'

चाचा साहब सर झुकाये सुनते रहे।

'चाचा, साहब ! क्या किया तुमने यह, तुम से आज विजयगढ़ का अपमान हुआ है।'

चाचा साहब चुप खड़े रहे।

उनका शरीर थर-थर कांपने लगा।

'मैं तुम्हें दण्ड दूंगा खडगसिंह।'

चाचा चुप !

'महाराज की जो इच्छा हो।

विक्रमसिंह बोले—

तुम बूढ़े आदमीं हो। कौन-सा दण्ड दूं तुम्हें ? देश निकाला ही तुम्हारे लिए काफी है।'

चाचा साहब राजा के चरणों में गिर पड़े।

'महाराज, विजयगढ़ से निर्वासन ! मैं,बूढ़ा हूँ, मेरी अक्ल मारी गई थी—मुझे विजयगढ़ में ही मर जाने दीजिये, मृत्यु दण्ड की आज्ञा प्रदान कीजिए। इस बुढ़ापे में सियार-कुतों की तरह मुझे विजयगढ़ से न भगाईये।'

राजा जयसिंह बोले—

'महाराज, मेरा निवेदन है कि आप इनका अपराध क्षमा कर दें। मैं सम्राट को सारी बातें समझा दूंगा।

चाचा साहब को क्षमा कर दिया गया।

बाहर निकलते ही वह लड़खड़ा कर गिर पड़े।

और उस दिन के बाद वह किसी को दिखाई न पड़ते थे, वे घर से न निकलते थे ! जैसे चाचा साहब की रीढ की हड्डी टूट गई थी।

●●●

पीताम्बर राय, ब्रह्मपुत्र के किनारे गूजरपाड़ा नामक छोटे से गांव के जमींदार थे।

गांव की आबादी भी ज्यादा न थी।

पीताम्बर राय अपने पुराने चंडी मण्डप में बैठे हुए अपने आपको राजा कहा करते थे। वहां के लोग उन्हें राजा कहा करते थे।

उनकी राज महिमा आम्रादि पेड़ों से घिरे हुए इस छोटे से गांव में ही सीमित थी।

एक रोज...

एक अफवाह फैली।

भादो का महिना था।

अफवाह थी कि त्रिपुरा के एक राजकुमार नदी के किनारे वाले प्राचीन महल में रहने के लिए आ रहे हैं। कुछ दिनों बाद बड़ी-२ पगड़ी बांधे हुए लोगों ने आकर महल में चहल-पहल मचा दी।

इसके ठीक सात रोज बाद।

हाथी,घोड़ा और लश्कर लिये नक्षत्र राय गूजरपाड़ा ग्राम में स्वयं आ उपस्थित हुए।

उस धूम-धाम को देखकर सभी ने एक स्वर से कहा—

'हां राजकुमार तो ऐसे हुआ करते हैं।'

इस प्रकार पीताम्बर राय अपने पक्के दालान और चण्डी मण्डप के साथ एकाएक गायब हो गये। किन्तु उनके ऐशो-आराम में कोई कमी न आई।

वे अनुभव करने लगे कि राज-महिमा को नक्षत्र राय के चरणों में पूर्णतया अर्पित कर मानो वह अत्यन्त सुखी हुये।

मछली तथा तरकारी आदि का उपहार लेकर पीताम्बर राय प्रति-दिन नक्षत्र राय को देखने आते। उनके तरुण और सुन्दर मुख को देखकर पीताम्बर राय का प्रेम उमड़ पड़ता।

इस समय नक्षत्र राय ही उस गांव के राजा हो गये। और पीताम्बर राय प्रजा में मिल गये।

प्रति-दिन तीनों समय नौवत वजने लगी।

गांव के रास्तों पर हाथी-घोड़े चलने लगे।

राजद्वार पर नंगी तलवारों की चमक खेलने लगी, गांव में दुकानें लग गई।

पीताम्वर और उनकी प्रजा पुलकित हो उठी।

नक्षत्र राय मानो अपने सारे दुखों को भूल गये।

यहां रघुपति की परछाई तक न थी।

अपने इस मानसिक सुख और संतोष के कारण नक्षत्र राय विलासिता मे डूब गये।

ढाका नगर से नाचने--गाने वाले आ गये।

नक्षत्र राय ने त्रिपुरा-राज्य की सभी वातों का अनुसरण किया।

नौकरों में किसी का नाम मन्त्री रखा, किसी का सेनापति, पीताम्वर राय दीवान जी नाम से पुकारे जाने लगे।

नियमानुसार रोज दरवार लगने लगा।

नक्षत्र राय मामलों पर बड़े आडम्बरपूर्वक विचार करते थे।

सुख-पूर्वक दिन वितने ल गे।

एक दिन, सेनाओं से साथ पीताम्बर राय के चंडी-मण्डप पर आक्रमण किया गया तथा उनके पोखरे से मछली, वगीचे से

नारियल और पालक का साग लूटा गया।

लूट के सामान के साथ खूब धूम-धाम से महल में लौटा गया।

इस प्रकार के खेलों से नक्षत्र राय के प्रति पीताम्बर राय का स्नेह और भी बढ़ने लगा।

पुरोहित का नाम था केनाराय, किन्तु नक्षत्रराय ने उसका नाम रघुपति रख दिया था।

रघुपति कहकर वे उसको छेड़ते थे।

केनाराय के दरबार में न आने से नक्षत्र राय ने पूछा, तो पता चला—उनका लड़का बिमार है।

'बुलाओ उसको।' वह गुर्राया।

ठीक है उसी समय पुरोहित ने घर में प्रवेश किया।

पुरोहित को देखते ही नक्षत्रराय का गुस्सा न जाने कहां काफूर हो गया।

उनके भाव एकदम बदल गये।

मुख विकृत हो गया।

सिर पर पसीने की बूंदे छलछला आई।

वह असली रघुपति था।

आगे बढ़ कर रघुपति ने कहा—

'नक्षत्रराय।'

वे चुप रहे।

रघुपति ने फिर कहा—

'ठाकुर...'

रघुपति बोला—

'यहां आओ।'

नक्षत्रराम चुपचाप रघुपति के सामने आ खड़े हुये। फि.र बोले—

'क्या वात है।'

'मेरे साथ वाहर चलो।'

वाहर आकर रघुपति ने कहा—

'तुम राजकुल में पैदा हुये हो, तुम्हारे सभी बड़े राज्य करते आये हैं। एक तुम हो जो इस वन—प्रदेश में शृंगालराज बन कर पड़े हो।'

'किसी प्रकार तो रह ही रहा हूँ, और करता ही क्या। उपाय ही क्या है।'

'उपाय तो बहुत से हैं, उपाय की कमी नहीं है। मैं तुम्हें उपाय वता दूंगा। तुम मेरे साथ चलो।'

'एक वार जरा दीवान जी से पूंछ लूं।'

'नहीं।'

और हमारा यह सारा साज—सामान।'

'कुछ जरूरत नहीं।'

'और लोग-वाग।'

'आवश्यकता नहीं।

'हमारे पास ज्यादा रुपया नहीं है।'

'रघुपति वोला—

'मेरे पास हैं, विशेष टाल-मटोल न करो-आज सोने को जाओ, कल प्रातः काल ही यात्रा करनी होगी।'

रघुपति मुड़ कर जाने लगा।

नक्षत्रराय देखते रहे।

दूसरे दिन प्रातः जव नक्षत्रराय सोकर उठे तो चारणों ने मधुर राग में प्रभाती गाना शुरू किया।

—खिड़की से वाहर पूर्व दिशा में सूर्य उदय हो रहा था।

सामने से रघुपति चला आ रहा था।

पास आकर वह गम्भीर स्वर में बोला···

।यात्रा के लिए सब-कुछ ठीक है ना ।'

नक्षत्रराय ने कातर स्वर में हाथ जोड़कर कहा···

'ठाकुर, मुझे माफ करो-ठाकुर ? मैं कहीं भी नहीं जाना चाहता । मैं यहां मजे में हूं ?'

'क्यों ?'

'भैया के खिलाफ मैं कोई भी षड़यन्त्र न कर सकूंगा ?'

रघुपति जल उठा ।

'भैया ने तुम्हारा कौन सा उपकार कर दिया है, जो तुम···।'

नक्षत्रराय ने मुंह फेर लिया ।

और कहा—

'मैं जानता हूँ वे मुझसे प्यार करते हैं ।'

रघुपति भिन्ना कर हंसा ।

'राम-राम ! कितना प्यार ! यही समझ कर तो बिना विघ्न-बाधा के ध्रुव को युवराज के आसन पर बैठने के लिए झूठा आरोप लगाकर भैया ने तुमको राज्य से बाहर निकाल दिया···

···ताकि कहीं राज्य को भारी वजन से यह मक्खन की गुड़िया के समान प्यार से भरा भाई स्थापित न हो जाये ! उस राज्य में अब फिर तुम आसनी से प्रवेश कर सकोगे ? मूर्ख !'

'क्या मैं इस छोटी सी बात को नहीं समझता । मैं सब कुछ समझता हूँ, किन्तु क्या करूं ? कहिए तो सही, उपाय ही क्या है ।'

'उसी उपाय की बात तो हो रही थी । उसी के लिए तो आया था ।' रघुपति ने आगे कहा—

'इच्छा हो तो मेरे साथ चलो, आओ नहीं तो इसी बांस के वन में बैठे–२ अपने हितैषी भाई का ध्यान करो···मैं तो चला ।'

'मैं चलूंगा ठाकुर, किन्तु अगर दीवान जी भी जाना चाहें तो उन्हें साथ ले चलने में कौन-सी आपत्ति है ।'

'नहीं यह गलत हैं ।'

नक्षत्रराय के पांव बाहर निकलना न चाह रहे थे । किन्तु रघुपति तो जैसे जादूगर था ।

जाने के लिए नौका तैयार थी ।

नदी के किनारे नक्षत्रराय को देखकर कन्धे पर गमछा रखे पीताम्बर राय ने प्रसन्ता से कहा···

'जय हो महाराज ! सुनता हूँ कि कल कहीं से एक अशुभ लक्षण वाले किसी विचित्र ब्राह्मण ने आकर दरबार में विध्न डाल दिया था ।'

नक्षत्र की स्थिती डांवाडोल हो गई ।

रघुपति गुर्राया···

'मैं ही वह विचित्र ब्राह्मण हूं ?'

पीताम्बराय हंस पड़े ।

'तब तो यह बात तुम्हारे सामने कहनी ठीक नहीं थी । जान-बूझ कर कौन ऐसा कहता है । पर महाराज आप इतनी सवेरे, नदी किनारे कैसे ।'

नक्षत्रराय ने कहा···

'मैं जा रहा हूं दीवान जी ,'

'जा रहे है, कहां ! नेपाड़ा में मण्डल के धर ।'

'नहीं वहुत दूर ।'

'तो क्या पाहकघाट शिकार के लिए जा रहे हैं ।'

उधर रघुपति वोला···

'दिन चढ़ता जा रहा है। आओ नाव पर चढ़े।'

पितास्वर राय ने अत्यन्त सन्देह पूर्वक व क्रोध से पंडत की ओर देखकर कहा...

'तुम कौन हो जी, जो हमारे महाराज को हुक्म देने आये हो।'

नक्षत्रराय वे कहा...

'यह हमारे गुरूदेव हैं।'

'होंगे, गुरुदेव...वे हमारे चण्डी मन्डप में रहें। चावल और केला दिला दूंगा। वे आराम से रहे। महाराज की उनको क्या आवश्यकता है।'

'समय व्यर्थ जा रहा है।' रघुपति गुर्राया—'मैं तो चला।'

पीताम्बर राय ने जल कर कहा...

'जैसी आपकी इच्छा, आपको देर करने से क्या लाभ, आप जल्दी से फूट लें, मैं महाराज को लेकर राज्य महल ले जा रहा हूं ?'

'नहीं, नहीं ! दीवान जी, में भी जा रहा हुं ?'

'तो फिर मैं भी आपके साथ चलूंगा। लोग-बाग को साथ ले लीजिए औंर राजा स सम्मान शान से चलिये। राजा जायेंगे तो क्या दीवान जी साथ नहीं चलेंगे ?'

तुम नहीं जा सकते।' रघुपति ने कहा।

'देखो तुम अपनी चोंच बन्द...' पीताम्बर राम क्रोध से भुनभुनाये।

'...अच्छा दीवान जी मैं चल रहा हूँ..., वरना देर हो जाएगी।'

पीताम्बर राय दुखी होकर नक्षत्रराय का हाथ पकड़ कर बोले...

'देखो, भई, मैं तुमको राजा कहता हूँ पर अपनी औलाद के समान प्रेम करता हूं ! मेरे कोई औलाद नहीं है। तुम्हारे ऊपर मेरा जोर नहीं है···तुम ज, रई हो और मैं तुमको जबर-दस्ती पकड़ कर नहीं रख सकता। किन्तु मेरा यह अनुरोध है कि जहां भी जाओ···मेरे मरने के पहले लौट आना। मेरी यही एक मात्र इच्छा है।'

नक्षत्रराय और रघुपति नाव पर चढ़ गये।

नाव दक्षिण की ओर चल पड़ी।

पीताम्बर राय उदास, डगमगाते कदमों से वापस लौटने लगे।

गूजर पाड़ा मानों निर्जन हो गया उसके सभी आमोद-प्रमोद समाप्त हो गये।

लम्बी राह,

कहीं नदी कहीं घना जंगल और कहीं छाया-रहित मैदान। कभी नाव से, कभी पैदल और कभी टट्टुओं पर, कभी धूप में, कभी वर्षा में, कभी कोलाहल-युक्त दिन के वक्त और कभी रात्री के भरे हुये अन्धेरे में नक्षत्र राय बिना आराम किये चले जा रहे थे।

रघुपति एक परछाई की तरह साथ लगा रहा।

नक्षत्रराय का भविष्य उन्हें न जाने कहां घसीटे लिये जा रहा था।

वह थके हुए स्वर से बोले—

'अभी और कितनी दूर चलना है'

'अभी काफी दूर है।'

'जाना कहां है।'

इसका उत्तर नदारद था।

नक्षत्रराय ने गहरा निश्‍वास लेकर रघुपति को घूरा और आगे बढ़ने लगे।

झाड़ियों के बीच पत्तो द्वारा छायी हुई एक सूनसान कुटिया को देखकर उनके मन में आया, काश मैं इस कुटिया में रहने वाला साधारण इन्सान होता।

—रास्ते के दुखों के कारण वह काफी दुर्बल हो गये थे।

लगभग रोते हुये वह बोले—

ठाकुर अब मैं बचूंगा नहीं।'

'इस वक्त तुम्हें मरने कौन देगा।'

वह समझ गये, रघुपति की आज्ञा मिले बगैर वह मर भी नहीं सकते।

उनकी आंखों में आंसू आ गये।

अपने भाग्य को कोसने लगे।

रघुपति के इशारे पर ही उनकी सारी सत्तासंचालित होती थी।

आगे बढ़ते जा रहे।

नारियल के जंगल वाले देश को छोड़कर अब दोनों ताल वन के देश में आ पहुंचे थे।

बीच-२ में कभी बड़े-२ बांध सुखी हुई नदी दूर

बादलों की भांति पहाड़ दिखाई पढ़ते थे।

क्रमश: शाहशुजा की राजधानी पास आती जा

थोड़ी देर बाद वे राजधानी में प्रवेश कर गये।

हार और पलायन के पश्चात् शुजा सेना इक

लगा हुआ था।

किन्तु राजकोष में धन की कमी थी।

प्रजा करों की वजह से दुखी थी।

इसी बीच औरंगजेब दारा को पराजित कर और उसकी हत्या कर दिल्ली के सिंहासन पर बैठ चुका था।

यह खबर पाकर शुजा एकाएक विचलित हो गया।

सेना तैयार न थी।

इसलिए कुछ मौका पा जाने की आशा से उसने छल पूर्वक एक दूत औरंगजेब के पास भेज दिया।

उसने कहला भेजा कि नयनों की ज्योति हृदय के आनन्द परम स्नेहास्पद प्यारे भाई। औरंगजेब ने राजसिंहासन प्राप्त करने में सफलता प्राप्त कर ली हैं, इससे शुजा के मरे हुए शरीर में मानों जान आ गई हैं।

औरंगजेब ने अत्यन्त आदर से दूत को बुलवाया।

उसने शुजा के स्वास्थ और उसके परिवार के शुभ समाचार जानने के लिए विशेष रूप से उत्सुकता दिखलायी और कहा—

जब शहन्शाह शाहजहाँ ने खुद शुजा को बंगाल का शासन भार सौंपा था तब दूसरी स्वीकृति की कोई जरुरत नहीं है।'

दूसरी ओर, ठीक इसी समय रघुपति शुजा के दरबार में हाजिर हुआ।

शुजा ने मन में सोचा—फिर कृतज्ञता और आदर के साथ अपने उद्धारक को बुला भेजा और पूछा—

'कहो क्या हाल है।'

रघुपति ने कहा—

'महाराज से कुछ निवेदन करना है। वह आगे बोला—

'मेरा अनुरोध यह है कि।

शुजा उसे बीच में ही रोककर बोला—

'पंडत ! तुम्हारी अनुरोध में अवश्य पूरी करूंगा लेकिन फिलहाल कुछ रोज तक सब्र करो। अभी खजाने में धन नहीं है।

'शहन्शाह ! मुझे चांदी सोना या ऐसी कोई कीमती धातु नहीं चाहिए। इस समय तो मुझे चाहिए तलवारों के रूप में सिर्फ सान चढ़ाया हुआ इस्पात ! आप मेरी फरयाद सुन लीजिए मैं न्याय की प्रार्थना करता हूं।

'बड़ी मुश्किल है, इस वक्त हमें सोचने का मौका नहीं है। तुम बड़े बेवक्त आये।

'शहजादे, समय और असमय सबके लिए है' आप बादशाह हैं।'

'तुम समझते क्यों नहीं। शुजा ने निराशा से गरदन हिलाकर कहा—

'बड़ी मुश्किल है। इन बातों को सुनने के बजाय फरियाद ही सुनना ठीक है। अच्छा, कहते चलो।'

रघुपति ने कहा—

त्रिपुरा के राजा गोविंद माणिक्य ने अपने भाई नक्षत्र राय को बिना किसी अपराध के राज्य से निकाल दिया है।'

शुजा ने भौंहें सिकोड़ कर कहा।

'पंडत ! तुम दूसरे की फरियाद लेकर क्यों मेरा समय खराब कर रहे हो। अभी इन्हीं बातों पर गौर करना ठीक नहीं है।'

'फरियादी राजधानी में उपस्थित है।'

'वह खुद हाजिर होकर अपने मुंह से जब फरियाद करेगा, तभी गौर किया जायेगा।

'उसको यहां कब पेश करना।'

'एक सप्ताह बाद ले आना ।'

'हुजूर अगर हुक्म दें तो मैं उनको कल ही ले आऊं ।'

'शुजा ने विरक्त होकर कहा ।

'अच्छा कल ही लाना ।'

आज किसी प्रकार छुटकारा मिल गया ।

रघुपति चला गया ।

——।'

——।'

'वह तो तुम ठीक कहते हो—नवाब के पास जाऊंगा तो सही, पर नजराना क्या ले जाऊंगा ।'

'इसके लिए तुम्हें परेशान होने की जरूरत नहीं है । रघुपति ने कहा ।

फिर उसने नजराने के डेढ़ लाख रुपए नक्षत्र राय के सामने रख दिए ।

दूसरे दिन ।

प्रातःकाल भयभीत नक्षत्र राय को लेकर रघुपति शुजा के के दरबार में हाजिर हुआ ।

जिस वक्त डेढ़ लाख रूपया शुजा के चरणों में समर्पित हुआ उस समय उनकी मुखाकृति पहले के समान अप्रसन्न दिखलाई नहीं पड़ रही थी ।

नक्षत्र राय की फरियाद आसानी से सुन ली गई ।

शुजा ने कहा—

तुम जो चाहते हो, वह साफ साफ कहो ।

रघुपति ने कहा—

गोविंद माणिक्य को निर्वासित करके उसकी जगह पर नक्षत्र राय को राजा बनाने की आज्ञा दी जाए ।

हालाँकि शुजा को अपने भाई औरंगजेब के बादशाह होने में

हस्तक्षेप करने पर कोई संकोच न होता था तथापि इस अवसर पर उसके मन में न जाने क्यों हिचकिचाहट पैदा होने लगी।

किन्तु फिर भी रघुपति की फरियाद पूरी करना अन्य बातों की अपेक्षा उसे ज्यादा सहज जान पड़ा। फिर डेढ़ लाख रूपए के नजराने पर भी आपत्ति करना ठीक नहीं था।

शुजा बोला।

'गोविंद माणिक्य के देश निकाले और नक्षत्र राय के राजा होने का फरमान तुम्हारे साथ ही देता हूं। तुम उसे ले जाओ।

कुछ शाही सेना भी साथ में देनी होगी।

'यह नहीं होगा''शुजा ने कहा—मैं लड़ाई मोल नहीं ले सकता!

रघुपति जल्दी से बोला—

युद्ध के खर्चा के लिए अलग से मैं छत्तीस हजार रूपया दिए देता हूं, तथा नक्षत्र राय के त्रिपुरा के राजा हो जाने के बाद ही मैं एक लाख साल का कोप मैं सेनापति द्वारा भिजवा दूंगा।'

यह बात शुजा को जंच गयी।

वह इस बात पर राजी हो गया।

मुगल सेना का एक दल साथ लेकर रघुपति और नक्षत्र राय त्रिपुरा की ओर चल पड़े।

इस वर्ष त्रिपुरा में एक अभूत पूर्व घटना घटित हुयी।

उत्तर दिशा से सहसा झुंड के झुंड चूहे खेतों में आ निकले। उन्होंने सारी खेती नष्ट कर डाली। यहां तक कि किसानों के

घरों में जो कुछ अन्न संचित था। उसको भी वहुत कुछ खा डाला।

राज्य में हाहाकार मचा हुआ था।

देखते —२ अकाल आ पड़ा।

लोग वन के कन्द मूल खाकर जीवन विताने लगे।

जानवरों का मांस वाजार में महंगा हो गया।

लोग जंगली भैंसे, हिरन, खरगोश, साही, गिलहरी जंगली सूअर और कछुओं का शिकार करके खाने लगे।

वे हाथी पा जाने पर उसे भी मारकर खा जाते।

अजगर और सांपों को खाने लगे।

जगह —२ पर नदी का जल रोककर उसमें एक नशिली लता छोड़ देने से मछलियां मर कर ऊपर को आने लगी। लोग उन्हीं को सुखाकर खाने लगे।

इस प्रकार भोजन तो किसी न किसी प्रकार चल ही जाता, किन्तु वड़ी अस्त–व्यस्ता उत्पन्न हो गयी।

चोरी, डकैतियाँ चालू हो गयी।

प्रजा में विद्रोह उत्पन्न हो गया।

प्रजा कहने लगी…

मां की वलि वन्द करने के कारण ही उनके साथ में ये दुर्घटनायें हो रही हैं।

पुजारी विल्वन इन वातों को हंसी में उड़ा देता।

लोग कहते…

'पुजारी जी, राजा के पाप के कारण ही प्रजा कष्ट पाती है। क्या हमने मां की वलि वन्द करके पाप किया, उसी का यह दण्ड है?'

विल्वन ने सारी वातें एक वारगी उड़ा दी।

'मां के सामने जव हजारों की नर वलि होती थी…

समय आपकी अधिक प्रजा की हानि होती थी अथवा इस अकाल में हुयी है। लोग निरूत्तर हो जाते।

विल्वन को राजा ने बुलाकर कहा—

'पुजारी जी ! आप घर-घर घूमकर लगातार काम करते रहते हैं। लोगों की जितनी भलाई करते हैं उतना ही आपको फल भी मिलता है। इसी आनन्द में आपका सारा शक मिट जाता है। मैं केवल दिन-रात सिर पर मुकुट रखे सिंहासन पर बैठा रहता हूं। बहुत सी चिंताओं को सर पर लादे हुए हूं। आपके काम को देखकर मुझे जलन होती है।

महाराज मैं आप ही का तो एक अंश हूँ। अगर आप सिंहासन पर न रहते तो मैं कर ही क्या सकता था। आप और हम मिलकर ही तो पूर्ण हुए हैं।

इतना कहकर विल्वन ने विदा ली।

राजा सिर पर मुकुट रखें सोचने लगे।

मेरा काम तो बहुत बाकी पड़ा है, पर मैं उसको करता ही नहीं। मैं केवल अपनी हीं चिन्ता करके निशिचन्त रहता हूं। कारण से प्रजा को विश्वास प्राप्त नहीं कर पाता—मैं करने योग्य नहीं हूं ?

***

मुगल सेना के साथ नक्षत्र राय आराम करने के लिये तेतुल नामक एक गांव में रुका हुआ था।

सवेरे रघुपति ने आकर कहा—

यात्रा शुरू करनी होगीं, महाराज ! तैयार हो जाईये।

'महाराज !'

समय है । सैनिकों को मार पीठ से रोकना उनका उत्साह ठन्डा करना है ।

रघुपति यह सुनकर दंग रह गया ।

वह कहने लगा—

इस समय इनको छूट दे देने से फिर ये त्रिपुरा में भी लूट मचायेंगे ।

तो इसमें हर्ज ही क्या है । हम तो चाहते ही यही पुजारी जी आप इस विषय में कुछ नहीं जानते, आपने कभी नहीं किया ।

रघुपति के नेत्र चमक उठे ।

वह चाहता भी तो यही था ।

★ ★

त्रिपुरा में इस समाचार ने सनसनी सी फैलादी ।

नक्षत्रराय त्रिपुरा पर हमला करने के लिए एक बहुत लेकर आ पहुंचा हे । त्रिपुरा की सोमा पर लूट मार ...चार शुरू कर दिए ।

पूरा राज्य आंतकित हो उठा ।

राजा के दिल में यह समाचार पैनी छुरी की तरह ल वह दुखी हो उठे ।

रह-रह कर उन्हें यह बड़ा अजीब सा लग रहा था नक्षत्रराय उन पर हमला करने आया है । वे नक्षत्र के और सुन्दर चेहरे को अपनी कल्याण की प्रेम भरी आंख सामने देखने लगे ।

उन्होंने सोचा, नक्षत्रराय एक बड़ी फोज साथ लेकर तल हाथ में लिये मुझ से लड़ने आ रहा है ।

उन्होंने ध्रुव को गोद में बिठाकर कहा...

क्या तू भी मुझ से इस मुकुट के लिए झगड़ा कर स

है। इतना कहकर उन्होंने अपना मुकुट जमीन पर फेंक दिया।

एक मोती टूट कर गिर पड़ा।

ध्रुव ने आग्रह पूर्वक हाथ वढ़ा कर कहा—

'मैं लूंगा ?'

राजा ने ध्रुव के सिर पर मुकुट रख दिया—

मैं किसी से लड़ना नहीं चाहता। फिर अचानक उन्होंने ध्रुव को सीने से लगा लिया।

थोड़ी देर वाद राजा विल्वन से कह रहे थे···

पुजारी जी यह सव हमारे पाप का फल है।

इन सारी वातों से मेरा धैर्य छूटा जा रहा है। दुःख पाप का ही फल है, यह कौन कहता है? यह पुन्य काभी फल हो सकता है। कितने ही धर्मात्मा लोग अपना पूरा जीवन दुःख में ही विता डालते हैं।

राजा निरूत्तर हो गये।

महाराज इस समय आप युध्द की तैयारी कीजिये। अव देर न कीजिये।

'मैं युध्द नहीं करूंगा!'

यह नहीं हो सकता, आप शांति से वैठकर युध्द की योजना पर विचार करें। मैं तव तक सेना इकट्ठी करने की कोशिश करता हूँ। इस समय सब लोग खेती पर गये हैं। इसलिए पर्याप्त सैनिकों का जमा होना मुश्किल है, फिर बिल्वन उत्तर की प्रतिक्षा किये विना वहां से चला गया।

राजा की आंखों में आंसू आ गये थे।

पुजारी बिल्वन पर इस वक्त बहुत सारा काम आ पड़ा था।

उसने चट्ट ग्राम के पर्वती प्रदेश में बहुत से उपहारों के साथ द्रुतगामी दूत भेजे।

कुकिग्राम के स्वामी के पास कुकि सेना भेजने का अनुरोध किया।

युद्ध का नाम सुनकर वे लोग आनन्द से नाच उठे। कुकि जाति के स्वामी को लाल कहा जाता था। उसने युद्ध की सूचना के रुप में लाल कपड़े में बंधी हुई कटार को गाँव-२ में भिजवा दिया।

देखते—२ कुकि सैनिकों की भीड़ त्रिपुरा की पहाड़ियों पर आ पहुंची। उन लोगों को किसी नियम से संयत करके रखना बहुत कठिन था।

बिल्वन खुद त्रिपुरा के गांव-गाँव में जाकर युवकों को छांट-छांट कर लड़ाई के लिए इकट्ठा करने लगा।
आगे बढ़कर मुगल सेना पर हमला करना पुजारी को ठीक प्रतीत नहीं हुआ। शत्रु जब समतल भूमि को पार करके दुर्गम पहाड़ों पर पहुंचे तब अचानक उस पर हमला करके उसे चकित कर देने की योजना बनायी गई।

बड़े पत्थरों से गोमती का पानी रोक दिया गया, ताकि पराज्य की आंशका से एकदम बांध को तोड़ कर नदी की बाढ़ से मुगल सेना का डुबाया जा सके।

'......'

......'

नक्षत्र राय गांवों को लूटते हुए त्रिपुरा के पहाड़ी इलाके में आ पहुंचा।

खेती का काम समाप्त हो चुका था।

गांव वाले कटार और तीर कमान लेकर युद्ध के लिये तैयार हो गए।

कुकि दल को तो उवाल खाते हुए जल प्रताप के समान अब अधिक देर तक बाँध कर नहीं रखा जा सकता था।

राजा गोविन्द माणिक्य कह रहे थे—

मैं युद्ध नहीं लडूंगा।

विल्वन ने कहा...

'यह निरर्थक वात है।

मैं राज्य करने के काविल नहीं हूं। इसके सभी सबूत मौजूद हो रहे हैं. मुझमें प्रजा को विश्वास नहीं रहा। संकट काल की यही सूचना है। इसलिये युद्ध भी हो रहा है।

यह कहकर आप अपने को दुर्बल दर्शाते रहे हैं।

तुम ये ही समझ लो पुजारी जी कि मेरी हार हो गई और नक्षत्र राय मुझे मार कर राजा हो गया।

अगर सचमुच ही वात ऐसी हो जाए तो मैं महाराज के लिये शोक नहीं करूंगा। किन्तु जब महाराज कर्त्तव्य से विमुख होकर भागना चाहते हैं तो दिल वड़ा दुखी होता है।.

'तो क्या मैं अपने भाई की ही हत्या करूं?'

कर्त्तव्य के सामने भाई कुछ नहीं, कुरूक्षेत्र से लड़ाई के वक्त श्री कृष्ण ने अर्जुन को जो इलम दिया जरा उसके वारे में तो सोचिए।

'पुजारी जी आप क्या कह रहे हैं, मैं अपने ही हाथों से नक्षत्र राय पर वार करूंगा?'

'हां!'

'छी। ऐसी बात नहीं करते।' सहसा ध्रुव ने पास आकर

कहा।

वह खेल रहा था।

दोनों को बहस करते देख वह समझा कि दोनों में लड़ाई हो रही है।

विल्वन ने ध्रुव को गोद में उठा लिया और उसे चूमने लगा।

राजा सोच रहे थे, ध्रुव के मुख से मैंने वह सुना है जो मुझे करना चाहिये था। अन्त में वह बोले…

पुजारी जी मैंने सोच लिया है कि मैं खून नहीं बहाऊंगा… मैं नहीं लड़ूगां ?

'ठीक है महाराज, विल्वन ने गहरा निश्‍वास लेकर कहा—

अगर महाराज को लड़ने से इन्कार है तो दूसरा काम कीजिये, आप नक्षत्र राय से मिलकर उनको कुछ रोकने के लिए कहिये !

'यह मुझे मन्जूर है।'

तो इसी तरह का प्रस्ताव मन्जूर करें, उसे नक्षत्र राय के पास भेजना पड़ेगा।

और आखिर में यही निर्णय हुआ।

+++

नक्षत्र राय मुगल सेना लेकर आगे बढ़ रहा था। कोई भी बाधा सामने नहीं आई थी।

त्रिपुरा के किसी भी गांव में पहुंचते ही वहाँ के लोगों ने उसे राजा मान लिया।

वह अति प्रसन्न था।

मुगल सेना भी प्रसन्न थी।

क्योंकि वह जो कुछ भी चाहती थी, उसे उसकी फौरन इजाजत मिल जाती थी।

नक्षत्र राय सोचता था कि यह मेरा ही तो राज्य है। वे लोग मेरे राज्य के मेहमान हैं। इनको किसी भी सुख से वंचित नहीं रहना चाहिये।

वह सोचता था कि जब मुगल सेना के ये सैनिक लौट कर चले जायेंगे तो उसके आतिथ्य और उसकी उदारता और दान-शीलता की प्रशंसा करेंगे।

रघुपति ने चारों ओर निगाह दौड़ा कर कहा…

'यहां तो लड़ाई की कोई तैयारी ही दिखाई नहीं पड़ती।'

नक्षत्र राय हंसा।

वे लोग हमसे डर गये हैं।

तभी रघुपति को गोविन्द माणिक्य का पत्र मिला।

रघुपति ने उस पत्र के बारे में नक्षत्र राय को कुछ नहीं बताया।

हां, पत्र लाने वाले से उसने कहा—

जाकर कह देना कि गोविन्द माणिक्य की इतनी दूर आने की आवश्यकता नहीं है, हाथ में तलवार और साथ में सेना लेकर महाराज नक्षत्र राय जल्दी ही उनके सामने आयेंगे।

फिर वह नक्षत्र राय से बोला…

गोविन्द माणिक्य ने अपने भाई को पटाने के लिये बड़ा शानदार पत्र भेजा था। आपको दिखाना उचित नहीं समझा और फाड़ कर फेंक दिया। और उनसे कहलवा भेजा कि लड़ाई के अलावा इसका कोई और उत्तर नहीं हो सकता।

नक्षत्र राय ने हंस कर कहा—

'ठाकुर, तुमने ठीक किया।' वह आगे बोला—

अब उन्हें मालूम हो जायेगा कि उनका भाई कोई मामूली आदमी नहीं है, जब चाहा उसे देश निकाला कर दिया, जब चाहा वापस बुला लिया। अब तो यह हो ही नहीं सकेगा।

वह जोरों से हंसने लगा—

*   *

बड़ा गहरा सदमा पहुंचा था गोविन्द माणिक्य को अपने पत्र का उत्तर पाकर।

'महाराज, अब आप क्या सोच रहे हैं।' बिल्वन ने पूछा।

मैं नक्षत्र राय से भेंट करूंगा ?'

अगर ऐसा न हुआ।

तो मैं राज्य छोड़कर चला जाऊंगा ?

अच्छा महाराज मैं फिर से कोशिश करता हूं ?' यह कहकर बिल्वन चला गया।

उधर, सन्यासी का भेष बनाकर अचानक बिल्वन नक्षत्र राय के सामने आ टपका ! वह जल्दी से बोला...

महाराज गोविन्द माणिक्य ने आपको याद किया है, और यह पत्र दिया है। उसने फिर एक पत्र निकाल कर आगे बढ़ा दिया।

नक्षत्र राय ने कांपते हाथों से पत्र ले लिया और खोलकर पढ़ा।

वह रोने लगे।

फिर पत्र को सिर से लगा लिया, मानों वह बड़े भाई का आशीर्वाद था, वह रोते हुए बोले—

मैं यह राज्य नहीं चाहता भईया, मेरे सभी अपराध क्षमा कर दो और मुझे अपने चरण में शरण दो। मुझे अपने पास ही रखो !

नक्षत्र राय की यह हालत देखकर वह बोला—

'युवराज, महाराज आपकी प्रतीक्षा में है।'

'क्या वे मुझे माफ कर देंगे।'

'वे जरा भी नाराज नहीं हैं, आप जल्दी करें वरना रात अधिक हो जाने के कारण रास्ते में बड़ा कष्ट होगा घोड़ा ले लीजिए—पहाड़ के पीछे महाराज के अनुचर आपका इन्तजार कर रहे हैं।'

नक्षत्र राय ने चौकीदारों से कहा—

'मैं शृंगार वाले पर्वत पर इन सन्यासी जी के साथ पूजा करने जा रहा हूँ।' और फिर वे बिल्वन के साथ चल पड़ा।

उनके बाहर निकलते ही घोड़ों की टापों की आवाज आई।

नक्षत्र राय घबड़ा उठा।

तभी रघुपति सेना के साथ वहां आ पहुंचा।

'महाराज इस समय आप कहां जा रहे हैं।'

उत्तर बिल्वन ने दिया—

'महाराज गोविन्द माणिक्य से भेंट करने जा रहे हैं।'

'यह नहीं होगा। रात का मामला है, यात्रा कल सवेरे चालु होगी।'

'कल सवेरे ही ठीक रहेगा।' नक्षत्र राय ने कहा।

बिल्वन निराश हो गया।

उसने रात वहीं बिताई।

सुबह जब उसने नक्षत्र राय से मिलना चाहा तो उसे रोक दिया गया।

'मैं महाराज से भेंट करना चाहता हूँ।' बिल्वन ने रघुपति से कहा।

'भेंट नहीं हो सकेगी।'

मुझे गोविन्द माणिक्य के पत्र का उत्तर चाहिए।'

पत्र का उत्तर पहली बार दिया जा चुका है।'

'मैं उनके मुख से उत्तर सुनना चाहता हूं।'

'इसका कोई उपाय नहीं है।'

बिल्वन ने समझ लिया, कि कोशिश करना बेकार है। जाते समय वह रघुपति से गुरांया—

'पड़ंत, तुम क्यों बेड़ागर्क करने पर उतारु हो, यह पडंत का ईमान नहीं है।'

'......'

'......'

यह सुनते ही महाराज ने कहा—

'मैं जा रहा हूँ पुजारी जी, नक्षत्र के लिए धन व राज छाड़े जा रहा हूँ?'

'यह मैं आज प्रथम बार देख रहा हूँ कि किसी मां ने अपने पुत्र को विमाता के हाथ में छोड़ कर संतान के भार से छुट्टी पा ली हो।'

'मैं अपनी प्रतिज्ञा नहीं तोड़ सकता।'

'महाराज तब आप आगे क्या करेंगे।'

'मैं तुम्हें बता रहा हूं!' महाराज ने बिल्वन से कहा—'मैं ध्रुव को साथ लेकर जंगल में चला जाऊंगा। अब तो मैं ध्रुव में ही सन्तुष्ट होकर ध्रुव के ही रूप में पुनर्जन्म प्राप्त करुंगा। मैं एकदम बनवासी भी नहीं होऊंगा। केवल मनुष्य समाज से कुछ दूर रहूँगा किन्तु समाज से पूरा सम्बन्ध नहीं तोडूंगा। यह तो सिर्फ कुछ दिनों के लिए है।'

'.......'

नक्षत्र राय सेना के साथ राजधानी के पास आ पहुंचा था। उसकी सेना ने लूटपाट शुरु कर दिया।

प्रजा गोविन्द मणिक्य को शाप देने लगी ।

यह सब राजा के पाप के कारण है ।

राजा एक बार रघुपति से भेंट करना चाहते थे ।

रघुपति के आने पर वह बोले—

'मैं नक्षत्र राय को राज्य सौंप कर चला जा रहा हूँ । तुम मुगल सेना को लौटा दो । त्रिपुरा को लूटा जाय, यह मैं भी नहीं चाहता ।'

महाराजा ने केदारेश्वर को बुलाया ।

'केदारेश्वर मैं ध्रुव को वन में ले जाना जाहता हूँ ।'

'यह मैं नहीं चाहता ।'

'राजा चौंक कर बोले—

'तुम भी मेरे साथ चलो केदारेश्वर ।'

'नहीं, महाराज मैं वन में न जा सकूंगा ।'

राजा ने कातर होकर कहा—

'तो मैं भी नहीं जाऊंगा । मैं भी यहीं अपने अनुचरों के साथ यहीं शहर में रहुंगा ।'

'जो, हो, महाराज, किन्तु मैं वन न जाऊंगा ।'

राजा ने एक लम्बी सांस छोड़ी ।

क्षण भर में ही संसार का रूप बदल गया ।

उनकी आँखों की कोरों में पानी उतर आया ।

'अच्छा, तो फिर ध्रुव यहीं रहे—मैं अकेला ही जाऊंगा ।'

अपनी जिन्दगी उन्हें एक लम्बा दलदली रेगिस्तान जान पड़ी ।

ध्रुव को केदारेश्वर को सौंप कर वह राजा निकल पड़ा ।

★★★

● ३ ●

नक्षत्र राय ने सेना के साथ पूरब के दरवाजे से राजधानी में प्रवेश किया।

उधर गोविन्द माणिक्य ने कुछ रुपया-पैसा और थोड़े से अनुचर अपने साथ लिये और पश्चिमी दरवाजे से नगर के बाहर की ओर प्रस्थान किया।

नागरिकों ने गाजे-बाजे के साथ शंख बजाकर और जय-जयकार करते हुए नक्षत्र राय का स्वागत किया।

दूसरी तरफ गोविन्द माणिक्य का सम्मान करना किसी ने उचित नहीं समझा।

शरद्कालिन प्रभात था। कुहासे को चीरकर सूरज की किरणें अभी-२ दृष्टिगोचर हुई थी।

जब राजा गोमती के किनारे ऊंचो भूमि के पास पहुंचे। तब तक पुजारी बिल्वन जंगल से निकलकर उनके सामने आ गया और हाथ उठाकर बोला—'महाराज की जय हो।' राजा ने घोड़े से उतर कर उन्हें प्रणाम किया।

'महाराज मैं आप से विदा लेने आया हूँ।'

'पुजारी जी आप नक्षत्र के पास रहकर उसको उचित परामर्श दें और राज्य की भलाई करें।'

'नहीं महाराज, जहां आप जैसा राजा नहीं, वहाँ मैं अकर्मण्य हूं। यहां रहकर काम नहीं कर सकूंगा।' बिल्वन ने आगे कहा—'मैं अपने काम की खोज में जा रहा हूँ, मैं कहीं भी रहूँ किन्तु आपके प्रति मेरा सम्मान कभी कम न होगा।

'तो मैं विदा लेता हूं।' यह कह कर राजा ने दोबारा प्रणाम

किया और चले गये।

नक्षत्र राय ने खूब समारोह के साथ छत्र माणिक्य के नाम से राजपद ग्रहण किया। खजाने में धन ज्यादा न था, इसलिए प्रजा को लूट कर, मुगल सेना को देकर किसी तरह उसे विदा किया गया।

उसने गोविन्द माणिक्य की सारी चीजें नष्ट कर दी उसकी प्रिय दास-दासियों को निकाल दिया। वह अब उनकी गंध को सहन नहीं कर सकता था।

चारों ओर प्रजा उससे भी असन्तोप प्रकट करने लगी। वह प्रजा के साथ कठोर व्यवहार करता था। लोगों को आश्चर्य होता कि इतने शांति प्रिय स्वभाव का आदमी राजा बनकर ऐसा कठोर व्यवहार कर रहा है।

रघुपति का काम खतम हो चुका था।

उसके मन में धधकती हुई आग अब शांत हो चुकी थी।

उसने पूरे इकत्तीस दिन मन्दिर में रहकर बिताये।

आखिर उसे पुरोहिती छोड़नी पड़ी और राज्य सभा में जाना पड़ा। वह हर इन्सान के कामों में हस्तक्षेप करने लगा। उसने देखा, नक्षत्र के राज्य में अन्याय अत्याचार और उतपीड़न तथा अव्यवस्था का बोलबाला था। उसने राज्य में एक व्यवस्था लाने की कोशिश की और उसको परामर्श देने की चेष्टा करने लगा।

नक्षत्र ने बड़ी बेरुखी से उसे डांट दिया।

'पुजारी जाईये आप मन्दिर का काम देखिये। राज्य-सभा में आपकी कोई जरूरत नहीं।'

रघुपति अवाक रह गया।

उधर नक्षत्र राय ने केदारेश्वर को अपने बच्चे सहित

से निकल जाने का हुक्म दिया।

उसी समय रघुपति मन्दिर में लौट आया।

पत्थर का मन्दिर चुपचाप खड़ा था।

गोमती के किनारे सफेद सीढ़ी के बांये किनारे पर जयसिंह के हाथ के लगाये हुए हार सिंगार के पेड़ में फूल खिले हुये थे। इन फूलों पर नजर पड़ते ही उसे जयसिंह का सुन्दर मुख और सरल चेहरा याद आने लगा।

रघुपति हमेशा जयसिंह से अपने को बड़ा समझता था किंतु इस समय वह अपने को छोटा महसूस कर रहा था।

जयसिंह के प्रति उसने जो-जो अन्याय किया था उसे याद करके उसका दिल विदीर्ण होने लगा।

उसे लग रहा था मानों यह दुनिया उसके लिये बहुत छोटी हो गई है।

यह याद करके भी उसे गुस्सा नहीं आया कि नक्षत्र राय को उसने राजा बनाया था और अब वो ही उसका अपमान कर रहा था।

मुझे ऐसा काम करना चाहिए जिससे कि जयसिंह की [illegible] को शान्ति पहुंचे।

उसकी कुछ समझ में नहीं आ रहा था।

उसे घुटन–सी महसूस हो रही थी।

इस निर्जन से मन्दिर को देखकर उसका दिल, पिंजड़े में बन्द पक्षी की भांति अधीर हो उठता था।

वह बाहर आकर चहल-कदमी करने लगा।

मन्दिर की मूर्तियों से उसे नफरत पैदा हो गई।

अन्धेरा बढ़ने पर उसने चिराग जलाया।

चिराग हाथ में लेकर वह आगे बढ़ा।

चौदह देवताओं की मूर्तियां स्थिर खड़ी थी। अपनी जगह पर।

अचानक रघुपति जोरों से चिल्लाया—

'झूठ ! एकदम झूठ !! बेटे जयसिंह अपने कीमती हृदय का खून तुमने किसे दे दिया। यहां कोई देवता नहीं—कोई भी देवता नहीं है। विशाल रघुपति ने, ही तुम्हारा खून पिया था।'

उसका चेहरा कठोर हो गया था।

उसने काली की मूर्ति को उठाकर बाहर फैंक दी। वह गोमती के पानी में जाकर अदृश्य हो गई।

जिस राक्षसी ने पत्थर की शक्ल अख्तियार करके कितने ही मनुष्यों का खून लिया था। वही आज गोमती के तल में हजारों पत्थरों के बीच गायब हो गई थी।

चिराग बुझा कर रघुपति बाहर आ गया।

उसी रात वह, उस जगह को छोड़कर कही चला गया।

'......'

'......'

बिल्वन नाम का पुजारी काफी समय से नोआखाली के निजामतपुर नामक स्थान पर रहता था।

आज-कल वहां बहुत महामारी फैली हुई थी।

एक दिन रात जब थोड़ी ही-सी रह गई थी, एकाएक जोर से आंधी आई।

आखिर में मूसलधार वारिष होने लगी।

बाढ़ आ गई।

तबाही-सी फैल गई।

रात काली थी।

लगातार वारिष हो रही थीं।

बादलों की आवाज कानों के परदों से टकरा रही थी।

जरा देर बाद ही गांवों में [illegible]

आया।

दूसरे दिन सूर्य निकला।

पानी में कमी हुई।

गाँव के थोड़े आदमी ही जीवित रह पाये थे।

काफ़ी पेड़ टूट गये थे।

मकानों के छप्पर पानी में वह रहे थे।

लोग-वाग अपने सगे-सम्वन्धियों की लाशें तलाश कर रहे थे।

दूसरे गांवों से भी काफी कुछ वहकर इधर निकल आया था। जिनमें इन्सानी लाशों के अलावा जानवरों की लाशें भी थीं।

गिद्धों के झुंड लवारिस लाशों पर भूखे शेर की भांति टूट पड़े।

बाढ़ में वहकर आई हुई लाशों के कारण पूष्करिणी का पानी भी दूषित हो गया था।

पुजारी विल्वन यहां आये तो यहां की हालत ही वड़ी चित्र हो रही थी।

उनको कई शिष्य भी मिल गये। वे इस तवाही से भागने के चक्कर में थे। सव मिलकर पठानों की सेवा करने लगे।

विल्वन ने कहा—

'मैं सन्यासी हूँ, मेरी कोई जाति नहीं। केवल इन्सान हूं मैं।'

कुछ लोग विल्वन से घृणा करने लगे। किन्तु बोलने का साहस किसी में न था।

विल्वन किसी की परवाह न कर अपने काम में लगे रहे।

अन्त में तवाही मुसलमानों के गाँव से हिन्दुओं के गांव में

आ पहुंची ।

गांव में एक तरह से अराजकता सी फैल गई ।

खूब चोरी, डकैतियां हो रही थीं ।जिसे जो मिलता उठा कर भाग खड़ा होता ।

बिल्वन यह सब रोकने की काफी चेष्टा कर रहे थे ।

बड़ी मुश्किल से बिल्वन ने गांव में शांति पैदा की ।

एक दिन सवेरे बिल्वन को उनके चेले ने आकर बताया कि एक आदमी और बच्चा, गांव के पीपल के नीचे पड़ा है ।

बिल्वन तुरन्त वहां पहुंचा !

बेहोशी की हालत में वह केदारेश्वर था । पास में ध्रुव भी पड़ा था ।

केदारेश्वर मृत्यु मुख में जाने ही वाला था ।

वह बीमार तो था ही कमजोर भी काफी हो गया था ।

कोई दवा काम नहीं कर रही थी ।

और उसने पीपल के नीचे दम तोड़ दिया ।

ध्रुव को लेकर बिल्वन अपने आश्रम में ले आ गया ।

०००

अराकान की हद में ही चट्टग्राम आता था । उड़ते-२ यह खबर अराकान के राजा के कानों में भी पड़ी कि गोविन्द माणिक्य निर्वासित के रूप में यहां आये हुये है, तो उसने तुरन्त ही एक अपना दूत उनके पास भेजा कि अगर वह अपना सिंहासन, राज्य वापस चाहते हों तो वे इसमें उनकी मदद कर सकते हैं ।

'नहीं, मैं कुछ नहीं पाना चाहता !' गोविन्द

उत्तर दिया।

दूत ने फिर कहा—

'तव आप अराकन राज्य के मेहमान बन कर यहां रहिये। जब तक चाहें।'

'मैं यह भी नहीं चाहता, हां चट्टगाम के किसी हिस्से में थोड़ी सी जगह मिल जाये तो मै अराकान राजा का अहसानमन्द रहूंगा।'

इस पर दूत ने कहा—

'महाराज, आप जहां चाहें ठहर सकते हैं, इसे आप अपना ही राज्य समझें।'

मयानी नदी के तट के समीप राजा ने अपनी झोंपड़ी बनाई। यह छोटी नदी पथरीले रास्ते मे होकर बड़ी तीव्र गति से बहती थी।

दोनों किनारों पर काले—काले ऊंचे पहाड़ थे।

कई पहाड़ तो इतने ऊंचे थे कि काफी समय के वाद धूप नदी के पानी पर पड़ती थी।

एक वहुत वड़ा शाखाहीन सफेद पेड, जिसका नाम गर्जन ।, पहाड के ऊपर झुका हुआ था।

नीचे पानी में उसकी छवि दिखाई पड़तीं थी।

इसी जगह पहाड़ की तलहटी में गोविन्द माणिक्य रहते थे। अपने हृदय के सब विचारों को निकाल फेंक, वह शांति पाने की कोशिश करने लगे।

निर्जन प्रकृति का साँतनामत्र गंभीर होने जैसीं सहस्त्रों निर्झरों की तरह उनके हृदय में दौड़ने लगा।

वे अपने दिल की खोह में दाखिल होकर क्षुद्र से क्षुद्र अभियान को भी धोकर फेंकने लगे।

किसी ने उनका सम्मान किया या अपमान सभी वातों को

उन्होंने भुला डाला ।

मानों दूर उन्होंने विस्तृत दुनियां में अपने कामनाशून्य स्नेह को फैला दिया और अपनी वासनाओं को दूर भगा दिया ।

वह मन ही मन बड़बड़ाये—

'हे प्रभु ! पतनोन्मुख ऐश्वर्य के शिखर से अपनी गोद में धारण करके आपने मेरी मदद की है ।

राजा होकर भी मैं अपना महत्व नहीं समझता था, पर आज मैं सब कुछ महसूस करने लगा हूँ ।

सहसा वह रोने लगे ।

आंखों से अविरल धारा बहने लगी ।

'प्रभु, आपने मुझ से ध्रुव को छीन लिया यह दुख मैं बर्दाश्त नहीं कर पा रहा हूँ ? लगता है आपने भी अच्छा ही किया । उस बच्चे के प्रेम में, मैं अपना कार्य भूल गया था…!

'आपने मेरी मदद की है, मैंने ध्रूव को अपने पुण्य का अवतार समझा था । इसलिए आज उस बच्चे की जुदाई सहन नहीं कर पा रहा हूं, मगर मैं इस दुःख को भी आपका प्रसाद समझकर माथे से लगाता हूँ ।'

उन्होंने देखा अकेले में ध्यान मग्न होकर प्रकृति स्नेह की जिस धारा को संचित करती है, उसे वह नदी के रूप में नगरों में प्रवाहित करती है ।

जो उसे पाते हैं, उनकी तृष्णा मिट जाती है और जो नहीं पाते उनके प्रति प्रकृति का कोई द्वेष नहीं ।

'मैं भी इस सुनसान क्षेत्र में संचित प्यार को उन्मुक्त जगहों में फैलाने के लिए निकलूंगा । यह सोचकर वे झोंपड़ी छोड़ कर आगे की ओर चल दिये ।

(सहसा राज्य छोड़कर उदास हो जाना-लिखने में जितना सरल है, वास्तव में वैसा नहीं है राज्य वेश उतार कर गेरुआ वस्त्र धारण करना कोई मामूली बात नहीं है।)

कई रोज तक वे बराबर चलते रहे।

आराम करने का नाम तक नहीं लिया।

पहाड़ी मार्ग को छोड़कर अब वह दक्षिण में समुन्द्र की ओर बढ़ने लगे।

कोई उन्हें बांध नहीं सकता था।

कोई मार्ग में रोड़ा नहीं अटका सकता था।

उन्होंने प्रकृति को अपने विशाल आकार में देखा था और अपने को भी उसके साथ एकाकार समझने लगे थे।

सूरज की एक नई किरण, प्रकृति की नई मुख शोभा देखने लगे।

मनुष्य की हंसी, बोल-चाल, उठने—बैठने, चलने-फिरने में वे एक अपूर्व नृत्य—गीत की मधुरता का आभास पाने लगे।

अगर किसी को देख लेते, तब पास बुलाकर उससे बातें भी करते थे।

जो उनका अनादर करता उससे से, भी वे नाराज नहीं होते थे।

हर किसी की सहायता करने में ही उन्हें असीम प्रसन्नता होती थी।

अब वे अपने स्वार्थ की कतई नहीं सोचते थे।

पृथ्वी के दुख, शोक, दरिद्रय, विवाद एवं विद्वेष को देख कर उनके मन में निराशा उत्पन्न नहीं होती थी।

एक मात्र मंगल चिन्ह को देखकर भी उनकी आशा हजारों अमंगलों को भेदकर स्वर्ग की ओर उन्मुख हो जाती

थी।

…चट्टग्राम के दक्षिण में रामूनगर यहां से दस कोष था।

सांझ से कुछ पहले जब वह आलस—खाल नामक एक छोटे से गाँव में दाखिल हुए तब उसी वक्त उनके कानों में किसी बच्चे के रोने की आवाज आई।

उनका मन चचंल हो उठा।

तुरन्त वे सामने झौंपड़ी में पहुंचे।

एक आदमी एक कमजोर, बिमार बच्चे को हाथों पर उठाये चहल-कदमी कर रहा था।

बच्चा कंपकपा रहा था।

वह आदमी बच्चे को सीने से लगाकर उसे चुप कराने, सुलाने का प्रयत्न कर रहा था।

सन्यासी वस्त्रों में राजा को देखकर वह आदमी जल्दी से बोला—

'महाराज, इसको दुआ दो।

गोविन्द माणिक्य ने अपना कम्बल बच्चे के शरीर पर डाल दिया।

बच्चे की आंखों के नीचे नानों हल्के पड़ गये थे। उसके सूखे हुए कमजोर चेहरे, गढ्ढ़ों में धंसी हुई केवल आंखें ही दिखाई पड़ रही थी।

इस आदमी ने बच्चे को कम्बल समेत पृथ्वी पर रखकर राजा का अभिवादन किया, और फिर उनके पैरों में गिर सा पड़ा।

राजा ने उसे कन्धे से उठाकर खड़ा किया। और फिर पूछा—

'क्या नाम है तुम्हारा ?'

मेरा नाम यादव है, में इसका बाप हूँ। प्रभु ने एक-एक करके मेरे सभी बच्चों को अपने यहां बुला दिया। बस अब एक यही बचा है!

राजा एक क्षण खामोश रहकर बोले—

'यहां आज रात में, मैं तुम्हारा मेहमान हूँ, कुछ खाऊंगा-पियूंगा नहीं अतः मेरे लिए कोई प्रबन्ध तुम्हें नहीं करना पड़ेगा। केवल यहां रात विताना चाहता हूं?

राजा वहां वहीं रुक गया।

सांझ हो गयी।

पास में कोई तलाव था जिस पर से की भाप उठ रही थी।

गोशाला में पुआल और सुखे पत्तों के जलने के कारण उठा हुआ धुंवा ऊपर उठ नहीं पाता था।

हवा एकदम बन्द थी।

यहां तक की एक पत्ता तक नहीं हिल रहा था।

राजा हल्की रोशनी में बीमार बच्चे का कमजोर मुख देख रहे थे।

काफी समय तक वे उसको कहानियां सुनाते रहे।

बच्चा अपने दुःख को भूल कर सो गया।

उन्होंने बराबर के कमरे में आसन जमाया।

ध्रुव की याद में उन्हें सारी रात नींद न आई।

ध्रुव के कारण उन्हें हर बच्चा ध्रुव ही लगता था।

सहसा उन्हें सुनाई पड़ा।

बच्चा कह रहा था—

बाबा! यह किसकी आवाज है।

बांसुरी बज रही है, बेटे!

'क्यों?'

कल पूजा जो है ?

पूजा के दिन मुझे भी कुछ दोगे बाबा ।

क्यों नहीं दूंगा ।

मुझे एक शाल दोगेना ।

बेटा शाल कहां से लाऊंगा मैं—मेरे पास तो कुछ भी नहीं है ।

'तुम्हारे पास कुछ नहीं ।

तुम तो हो बेटा ।

यादव ने कहा ।

राजा को फिर कोई बात सुनाई नहीं दी ।

रात खत्म होने से पहले ही राजा गृहस्वामी से बिना विदा लिये ही घोड़े पर चढ़कर रामू नगर की ओर चलने लगे ।

रास्ते में एक छोटी नदी पड़ती थी ।

घोड़े सहित उन्होंने नदी पार की ।

रामू नगर पहुंचे तो धूप निकल चुकी थी ।

वे यहां ज्यादा समय रूके नहीं ।

शाम से पहले ही वह फिर से यादव की झोपड़ी पर लौट आए ।

उन्होंने यादव को एक तरफ बुलाया ।

झोले से शाल निकाल कर उन्होंने यादव के हाथों में थमाया और कहने लगे—

आज पूजा के दिन यह शाल अपने बच्चे को दे देना ।

यादव उनके पैरों में गिर पड़ा ।

'महाराज आप लाये हैं, तब आप अपने ही हाथों से उसे दीजिए ।'

'नहीं, तुम दो ! मेरे देने से कोई फायदा

मेरा नाम तक न बताना, मैं तुम्हारे बच्चे

चला जाऊंगा ।

शाल पाकर बच्चा फुर्ती से झूम उठा ।

राजा उसे प्रसन्न देख वहां से चल पड़े ।

मैं कोई काम नहीं कर पाता हूँ ? उन्होंने सोचा ।

मैंने कुछ सीखा नही, केवल राज्य किया है ।

मैं नहीं जानता क्या कहने से एक बच्चा रोग से मुक्ति पा सकता है ।

पुजारी विल्वन होते तो इन लोगों का भला करते ।

अब मैं मारा-मारा नहीं फिरूंगा । नगर में रहकर ही कार्य करना सीखूंगा ।

रामू नगर के दक्षिण में एक दुर्ग था । उसमें वे अराकान राजा की आज्ञा लेकर रहने लगे ।

गांव के बच्चे उनके पास इकट्ठे होने लगे ।

उन्होंने एक पाठशाला खोल ली ।

वे बच्चों को पढ़ाते, उनके साथ खेलते थे ।

उनके घर जाते ।

बीमार पड़ने पर उन्हें देखने जाते ।

दुर्ग में जैसे उन्चासों पवन और चौसठों भूत एक साथ रहने लगे ।

राजा उनको धैर्य पूर्वक उन्हें मनुष्य बनाने लगे ।

मनुष्य का जीवन कितना बड़ा है और कितना प्राण पत्र से पालने और हिफाजित करने के काबिल होता है ।

गोविन्द माणिक्य का उद्देश्य यही था कि उनके आस पास कलंक मुक्त मानव-जन्य सार्थक हो सके ।

यह काम करने के लिए वह अपना जीवन लगा देना चाहते थे ।

इसी से वे हर दुःख पीड़ा, उपद्रव सहन कर लेते थे ।

कभी-कभी वह सोचते कि मैं अपना काम पूरा नहीं कर पा रहा हूं।

विल्वन होते तो बड़ा अच्छा होता।

इस तरह वह हजारों ध्रुवों को साथ लेकर अपना जीवन यापन करने लगे।

●×●

दूसरी ओर शाहशुजा पर तबाही आई हुई थी।
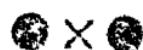
औरंगजेब की सेना ने उसका नाक में दम कर रखा था।

इलाहाबाद के पास वह हार चुका था।

औरंगजेब की सेना उसका कहीं भी पीछा नहीं छोड़ रही थी।

डर कर, हुलिया बदल कर वह अकेला ही भागता फिर रहा था।

सेना उसका पीछा करती रही।

आखिर में वह पटना पहुंचा।

नवाब के हुलिये में उसने परिवार वालों और प्रजा को अपने आने की सूचना दी।

उसके पटना पहुंचते ही औरंगजेब का लड़का शहजादा मुहम्मद फौज लेकर पटना के दरवाजे आ पहुंचा।

शुजा पटना छोड़कर मुंगेर भागा।

मुंगेर में उसकी बिखरी फौज उसके पास इकट्ठी होने लगीं।

उसने नयी सेना भी तैयार की।

तेरिभागढ़ी और शिकली गली के किले की मरम्मत करके

और नदी किनारे पहाड़ के ऊपर चहार-दीवारी बनाकर वह मजबूत होकर रहने लगा।

औरंगजेब ने सेनापति मीर जुमला को मुहम्मद की मदद के लिये भेजा।

मुहम्मद ने खुले रुप से किले के समीप आकर खेमा गाड़ दिया।

मीर जुमला दूसरे मार्ग से मुंगेर की तरफ बढ़ा।

शुजा मुहम्मद से लड़ाई कर रहा था।

तब अचानक खबर मिली कि मीर जुमला बहुत बड़ी फौज लेकर वसन्त पुर में आ पहुंचा है।

शुजा उसी समय अपनी सारी सेना साथ लेकर राज्य महल से भाग गया।

मुहम्मद ने तब भी उसका पीछा नहीं छोड़ा वह शुजा के खून का प्यासा बना हुआ था। उसे आश्चर्य जनक तौर पर एक चिट्ठी मिली। मुहम्मद ने चिट्ठी खोलकर पढ़ी।

लिखा था—

शहजादे क्या मेरे मुकद्दर में यह भी लिखा था। जिसको मन ही मन अपना सर ताज मान बैठी थी, जिसने मूंदरी (अंगूठी) बदल कर मुझ को अपनाने की कसम खाई थी, वहीं आज तलवार लेकर मेरे अब्बा को मारने आया है, क्या यही तुम्हारी मुहब्बत है।

पत्र शुजा की लड़की का था।

मुहम्मद अपने अब्बा औरंगजेब से बगावत पर उतर आया और शुजा से मिल गया। शुजा ने अपनी लड़की की शादी उससे कर दी।

अचानक मीर जुमला ने आक्रमण कर दिया। लड़ाई में शुजा का लड़का मारा गया।

एक दिन उसने अपने दामाद से कहा—'बेटा तुम अपनी स्त्री को लेकर यहाँ से चले जाओ ?' मुहम्मद ने रोते हुए वहाँ से विदा ली। उसकी स्त्री उसके साथ थी। उसके जाने के बाद शुजा ने कहा— 'अब मैं लडूंगा नहीं। चट्टग्राम से मक्का चला जाऊंगा।' हुलिया बदलकर वह ढाका से चल पड़ा।

अजीब दिन था, दोपहरी थी—धूप भी थी मगर वर्षा भी हो रही थी। इस मौसम में, ऐसे मार्ग में—एक फकीर तीन बच्चों के साथ ठीक उस रास्ते पर बढ़ रहा था जिस पर आगे 'किले में, गोविंद माणिक्य रहते थे।

सबसे छोटे लड़के की आयु चौदह साल से ज्यादा नहीं थी। वह जाड़े से कांप रहा था—

'अब्बा मेरे से चला नहीं जा रहा।'

फकीर ने एक गहरी निश्‍वास लिया। फिर बच्चे को गले से लगा लिया। बड़ा लड़का छोटे को डाँट कर बोला···रास्ते में इस तरह रोने से क्या फायदा। खामोश रहो। बाबा को परेशान मत करो ?'

वह चुप हो गया।

मगर सिसकता रहा।

मंझले लड़के ने प्रश्न किया।

'हम कहां जा रहे हैं ?'

फकीर ने उंगली से इशारा किया···वह सामने किले के पास।'

'वहां कौन है।'

'कोई राजा फकीर हो गया है। वो ही वहां पर रहता है।'

'राजा फकीर क्यों बना।'

'क्या कह सकता हूं! सुना है, उसके भाई ने उसे राज्य से निकाल बाहर किया है। हो सकता है इस वक्त संसार से अपने को छुपाने के लिये यही मार्ग मिला हो···गरीबी की काली स्याही तथा सन्यासी का गेरुआ वस्त्र। भाई के वैर से बचना मुश्किल होता है।'

दूसरे ने प्रश्न किया···

'यह फकीर किस देश का राजा था।'

'पता नहीं।'

'अगर उसने हमें ठिकाना न दिया तो।'

'तो हम पीपल के पेड़ के नीचे सोयेंगे। इसके अलावा हो ही क्या सकता है।'

शांम से कुछ पहले ही फकीर और सन्यासी का साक्षात्कार हुआ।

गोविंद माणिक्य ने घूर कर उसे देखा।

फकीर को फकीर कहना कुछ ठीक नहीं लगा।

हरेक प्रकार की छोटी से छोटी स्वार्थ भरी वासना से मन को मोड़कर एक मात्र उच्च उद्देश्य में मन लगाने से चेहरे पर एक तरह की जो ज्वालारहित विमल ज्योति प्रकाशित होती है। वैसी ज्योति उन्हे फकीर के चेहरे पर दिखाई नहीं दी।

फकीर हमेशा सतर्क और सशिकत रहता था।

उसके दिल की सारी भूखी वासनायें उसकी जलती हुयी आंखों से झांक रही थी।

आधीर हिंसा उसके दृढ़ता पूर्वक बन्द होठों और जकड़े हुए दांतों के बीच अवरुद्ध होकर जैसे अपने आप को खा रही थी।

और तीन बच्चे साथ में।

उनके अत्यन्त सुन्दर कोमल शरीर गर्व युक्त संकोच को देखकर लगा कि उनका जीवन अत्यन्त यत्न पूर्ण और सम्मानजनक ढंग से बीता है।

जमीन पर इस तरह चलने का उनका यह पहला मौका है।

गोविंद माणिक्य का इतनी दूर तक उनके बारे में सोच जाना उचित न था।

उधर गोविंद माणिक्य को देखकर फकीर ने सोचा कि उन्हें सन्यासी कहना उचित नहीं है। राजा कहना चाहिए।

गोविंद माणिक्य को देखकर ऐसा लगता था जैसे उन्होंने सब कुछ त्याग दिया है। फिर भी सब कुछ उन्हीं का है।

वे कुछ चाहते ही नहीं।

शायद इसलिए उन्हें सब कुछ मिल गया है।

जिस तरह उन्होंने अपने आपको पेश किया था उसी प्रकार दुनिया उनके समीप आ गयी थी।

उनमें किसी तरह का आडम्बर नहीं था…इसलिए वे राजा थे।

राजा ने मेहमानों की खूब खातिर की। किंतु उन्होंने राजा की सेवा प्राप्त करके कुछ अपने में हीनता की सी महसूस किया।

ऐसा लगा जैसे उन पर इस राजा का अधिकार है।

अपने ऐश के लिए किन–किन चीजों की उन्हें जरूरत है, यह

भी उन्होंने राजा को वता दिया ।

राजा ने मुस्कराकर वड़े लड़के को देखा ।

लड़का फकीर की तरफ को सरक गया ।

फकीर गम्भीरता से वोला—

'हम लोग तुम्हारे किले में कुछ समय रह सकते हैं ।

'क्यों नहीं ! जब तक भी रहोगे किसी किस्म की परेशानी तुम्हें उठानी नहीं पड़ेगी ।'

फकीर ने वदले में प्रश्न किया ।

'सुना है तुम किसी समय राजा थे ।'

'ठीक सुना है ।'

'कहां के राजा थे ।'

'त्रिपुरा के ।'

तीनों लड़कों ने चूंकि त्रिपुरा का नाम पहली वार सुना था अत: उन्होंने उसे वहुत ही छोटा राज्य समझा ।

किंतु फकीर थोड़ा विचलित हो गया ।

'तुम्हारा राज्य किस प्रकार चला गया ।'

एक क्षण चुप रहकर राजा ने उत्तर दिया ।

'वंगाल के शाहशुजा ने मुझे निर्वासित कर दिया है ।

राजा ने अपने भाई की कोई वात नहीं वताई ।

यह सुनकर सभी लड़के चौंके ।

फ़कीर का चेहरा उतर गया ।

'समझा ! यह सव तुम्हारे भाई का कार्य है । तुम्हारे भाई ही ने तुम्हें इस हाल में पहुंचाया है ।'

'आपको यह सव कैसे पता चला ।'

'वस थोड़ा सा अनुभव था ।'

रात होने पर सव सोने चले गये ।

फकीर को नींद न आई ।

दिन निकल आने पर फकीर ने राजा से कहा—

'किसी कारणवश हमारा रहना न हो सकेगा ।

हम आज चले जाएंगे ।'

• और जब जाने की तैयारी कर रहा था तो उसी समय एक मेहमान और आ गया ।

उसको देखकर राजा और फकीर दोनों चौंके ।

वह रघुपति था ।

राजा ने उसे प्रणाम किया ।

'जय हो, रघुपति बोला ।

'भाई के पास से आ रहे हो ठाकुर, कोई नई खबर ।

'वह ठीक है ! आप उनके बारे में न सोचें । वह बोला—

'मैं आज जयसिंह की आज्ञा से यहां आया हूँ, वह आज इस संसार में तो नहीं है किंतु उसकी ख्वाहिश पूरी किये बिना मुझे शांति नहीं मिलेगी ?'

रघुपति बोलता गया ।

राजा चुप थे ।

'कहीं आराम नहीं है, मैंने सब देखा है, नाराज करने में आराम है, न हिंसा में ! मैंने आपसे बड़ी दुश्मनी की । द्वेप किया । अपने सामने बलि चढ़ाना चाहा । इसलिए आज आपके सामने स्वस्त्र त्यागने आया हूं ?'

'ठाकुर एक तरह से तुमने मुझ पर उपकार ही किया है ।

''महाराज, मनुष्यों का खून-खराबा करके मैं एक वक्त जिस राक्षसी की सेवा करता था । उसने मेरे ही सीने का खून पी लिया । उसी खून की प्यासी को मैं दफा करके आ रहा हूं ।

'अगर वह मूर्ति मन्दिर से भी दफा हो गई है तो लोगों के दिल से भी दूर हो जायेगी। राजा ने कहा।

'नहीं! महाराज मनुष्य का हृदय ही तोड़ सका असली मन्दिर है। वही तलवार पर धार लगती है। वहीं नरवलियां होती हैं। मन्दिर में तोड़ सका नाटक मात्र प्रदर्शित किया जाता है। पीछे से एकाएक आवाज आई।

सब चौंक पड़े।

वह विल्वन थे।

राजा ने उनका अभिवादन करके कहा—आज मैं कितना खुश हूँ।

'अपने को जीतकर आपने सब पर विजय पा ली है। इसलिए आप के द्वार पर दोस्त, दुश्मन सब इकट्ठेहुए हैं।

तत्काल फकीर आगे बढ़ा और बोला—महाराज मैं आपका दुश्मन हूं।' वह आगे बढ़कर बोला—

'मैं बंगाल का नवाब शुजा हूं? बिना किसी अपराध के मैंने ही आपको निर्वासित किया था। और इसका दण्ड मुझे मिल गया। मौत मेरा पीछा कर रही है। सिर छुपाने की जगह के लिये भी मैं तरस गया हूं। आज आपके सामने आत्म-सम्पर्ण करके मानों मैं मुक्त हो गया हूँ।

राजा नवाब से गले मिले।

'मेरा कितना सौभाग्य है। वह बोले।'

रघुपति ने कहा—

'महाराज आपसे दुश्मनी करने में फायदा ही है। इसकी वज से ही मैं आज आपके इतने पास आ गया। वरना आपको समझने का मौका नहीं मिलता।

विल्वन हंसा।

जिस तरह जाल को तोड़ने के चक्कर में गला और भी फसता जाता है।

'मुझे किसी बात का दूख नहीं है, मैंने शांति पाली है।

विल्वन ने कहा···

'शांति और सुख दोनों अपने अन्दर ही है सिर्फ इस बात को हम जान नहीं पाते। भगवान के बनाए हुए इस मिट्टि के पात्र में आवेहयात अमृत भरा हुआ है। पर अगर तुम यह किसी से कहो तो कोई विश्वास ही नहीं करेगा।

चुप होकर विल्वन ने सबकी तरफ देखा—फिर आगे कहा।

'आघात लगने पर पात्र चकनाचूर हो जाता है। तब कहीं अमृत का स्वाद मिलता है। और बाद में पछतावा होता है। कि ऐसी अनमोल वस्तु भी थी इस पात्र में।'

ठीक इसी समय।

एकाएक गगन में ही नारे लगने लगे!

'एक हो! एक हो।

पलक झपकते ही किले में अनेक बच्चे आ उपस्थित हुए। उनमें छोटे बड़े सभी थे।

राजा विल्वन से बोले···

'देखो ठाकुर, यह मेरा ध्रुव है। इतना कहकर उन्होंने सभी बच्चों की ओर हाथ फैला दिया।

विल्वन ने कहा—

'महाराज जिसकी दया से आपने लड़कों को पा लिया है। वह भी आपको भुला नहीं सका है। विल्वन बाहर निकल गया वापस आया तो उसके साथ ध्रुव था। ध्रुव को उसने राजा की

गोद में दे दिया। राजा ने उसे सीने से लगा लिया।

ध्रुव चुप था।

राजा ने भरे कण्ठ से कहा।

'सब सही हो गया—बस नक्षत्र ने भाई कहकर नहीं पुकारा।

शुजा ने भावुक होकर कहा—'महाराज अन्य सभी भाई की तरह व्यवहार करते हैं सिर्फ अपना भाई ही ऐसा नहीं करता।

उपसंहार

बाद में पता चला कि वे तीनों लड़के शुजा की तीन लड़कियां थी जो हुलिया बदले हुए थी।

शुजा मक्का जाने के विचार से चट्टग्राम के बन्दरगाह पर गया था किन्तु बारिस के कारण उसे जहाज नहीं मिल सका।

आखिर में निराश सा होकर लौटते समय, किले में राजा से भेंट हुयी।

कुछ दिन वहां रहने के बाद मालूम हुआ कि वहां की सेना उसका पता लगा रही है। राजा गोविंद माणिक्य ने सवारी तथा अपने कई अनुचरों के साथ शुजा को अपने मित्र अराकान के राजा के पास भेज दिया।

जाते समय शुजा ने अपनी कीमती तलवार राजा को भेंट दी।

इधर राजा और बिल्वन ने सारे गाँव में जान डाल दी थी; राजा का किला सारे गांव का केन्द्र बन गया।

इस तरह छः वर्ष बीत जाने के पश्चात नक्षत्र राय की मृत्यु हो गयी।

त्रिपुरा से एक दूत आया जो गोविंद माणिक्य को वापस ले जाने आया था। राजा ने राज्य में फिर से लौटने को मना कर

दिया।

विल्वन ने समझाया…

'ऐसा नहीं होगा महाराज ? धर्म जब स्वयं दरवाजे पर आकर आवाज दे रहा है। तब आपको उसकी अवहेलना नहीं करनी चाहिये।

'मेरी इतनी दिनों की आशा अधूरी रह जाएगी और मेरा काम अधूरा रह जाएगा।'

'यहां आपका काम मैं अपने कन्धों पर सम्भाल लूंगा ?'

'अगर तुम यहां रहे तो मेरा वहां का काम अधूरा रह जायेगा।

'नहीं महाराज ! आपको मेरी जरूरत नहीं, आप खुद अब आत्मनिर्भर रह सकते हैं। अगर मुझे वक्त मिलता रहेगा तो मैं आपके दर्शन करने आया करूंगा।'

कुछ समय पश्चात राजा ने ध्रुव को साथ लेकर फिर से राज्य में प्रवेश किया। ध्रुव अब बालक नहीं था।

विल्वन से उसने संस्कृत की शिक्षा पायी थी और शास्त्रों का अध्ययन शुरू किया था।

रघुपति को फिर से पुरोहिती मिली।

इस बार मन्दिर में वापस आकर जैसे उसने मृत जयसिंह को फिर से जीवित रूप में पा लिया।

दूसरी ओर।

अराकान के विश्वासघाती राजा ने शुजा को मारकर उसकी सबसे छोटी लड़की से शादी कर ली।

अभागे शुजा के प्रति अराकान के राजा की इसी नृशंसता की खबर पाकर राजा गोविंद माणिक्य को बेहद दुख हुआ।

शुजा के नाम को चिरस्मरणीय करने के लिए उन्होंने उसकी तलवार के बदले में बहुत सा धन लगाकर कुमिल्ला नगर मे एक मस्जिद बनवा दी। वह आज भी शुजा मस्जिद के नाम से मशहूर है।

गोविंद माणिक्य के प्रयत्न से ही मिहिर कुल आबाद हुआ था।

उन्होंने अपनी खुशी से बहुत सी जमीन तामपत्र पर लिख कर पण्डितों को दान कर दी।

उन्होंने कुमिल्ला के दक्षिण वासिता ग्राम में एक काफी बड़ा तालाब बनवाया। कई अच्छे काम उन्होंने शुरु किये लेकिन उन में से कई को वे पूरा नहीं कर सके।

राजा गोविंद माणिक्य का स्वर्ग—वास सन् १६६६ में हुआ।

॥ समाप्त ॥